जुलाई–दिसंबर, 2025 वर्ष : 26 संयुक्तांक : 3-4

हिन्दी जगत

विश्व हिन्दी न्यास का त्रैमासिक प्रकाशन

विश्व हिन्दी न्यास
WORLD HINDI FOUNDATION, INC.

A Tax-Exempt Charitable & Educational Foundation (ID 31-1679275)

Website : www.worldhindifoundation.org

Board of Directors

Executive Director

Dr. Anchala Sobrin
20 Presidential Way, Hopewell Junction, NY 12533
Tel: (845) 226 2542 । Email: hindinyas@gmail.com

Secretary

Mrs. Padmini Prasad
1282 Royal Pointe Lane, Ormond Beach, FL 32174
Tel: (845) 764 1058 । Email: prasad.padmini@gmail.com

Treasurer

Mr. Pradeep Agarwal
25, Oak Tavern Circle, Branchburg NJ 08876
Tel: (646) 472 6320 । Email: pnagarwal@gmail.com

Directors

Dr. Surendra Nath Pandey, GA (706) 610 1601
pandeysn@yahoo.com
Mrs. Seema Khurana, NY (845) 227 8605
seemakhurana1223@gmail.com
Mrs. Sharmishtha Dutta Banerjee NY (845) 764 9014
sduttabanerjee@gmail.com
Mr. Anil Agarwal, NY (718) 271 3129
manishi.anil@gmail.com
Prof. Suresh Rituparna, India (+91) 09810453245
rituparna.suresh@gmail.com
Dr. Shyam Narayan Shukla, CA (510)770-1218
shuklas@comcast.net
Dr. Ila Prasad, TX (832) 446-3677
ila_prasad1@yahoo.com

Chapter Directors

Buffalo: Mrs. Meena Rustgi (716) 632 5768
rustgime@roadrunner.com
California: Mrs. Nirmala Shukla (510) 770 1218
nirmalashukla@comcast.net
Chicago: Mr. Kamal Gupta (847) 612 4244
citkam@gmail.com
New Jersey: Mr. Sharad Agarwal (732) 283 0566
sharad@sntravel.net
New York: Mr. Man Mohan Maheshwari (212) 678 9011
m_wari@yahoo.com

Web Master

Mr. Saugata Banerjee
Email : ronbans@gmail.com

Editor Hindi Jagat & International Co-ordinator

Prof. Suresh Rituparna
221 Prabhavi Apartments, Plot No. 29B,
Sector 10, Dwarka, New Delhi 110075
Tel: 91 11 4558 4374, Mob.: 91 98104 53245
Email: rituparna.suresh@gmail.com

विश्व हिन्दी न्यास की परिकल्पना (Vision)

1. एक ऐसा विश्व जहाँ हिन्दी एक महत्त्वपूर्ण वैश्विक-भाषा के रूप में विकसित हो।
2. एक ऐसी कार्य साधक भाषा बनाने का प्रयास जिसका प्रयोग सरकारी एवं निजी संस्थानों के अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र संघ में भी हो सके।

विश्व हिन्दी न्यास का उद्देश्य (Mission)

1. हिन्दी भाषा के प्रति वैश्विक जागृति लाने का प्रयास
2. ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में इसके प्रयोग का विस्तार
3. हिन्दी भाषी समुदायों के बीच संस्कृति जन्य ज्ञान पर आधारित मूल्य बोध एवं शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार

विश्व हिन्दी न्यास का लक्ष्य (Goals)

1. न्यास का प्रयास रहेगा कि वह ऐसे व्यक्तियों एवं संस्थाओं को अपना समर्थन और प्रोत्साहन दे जो हिन्दी भाषा के शिक्षण एवं प्रयोग के क्षेत्र में जागृति फैलाने के कार्य से जुड़ी हुई हैं।
2. दक्षिण एशियाई विद्वानों, लेखकों, कलाकारों एवं विशेषज्ञों के सहयोग से विशिष्ट परियोजनाओं का सूत्रपात करना।
3. एक ऐसे अन्तर्जालिक आभासी मंच का निर्माण करना जिस पर 'ऑनलाइन सेटिंग' के माध्यम से भारतीय सामुदायिक केन्द्रों एवं शिक्षण संस्थाओं तक हिन्दी-शिक्षण-कार्यक्रमों को पहुँचाया जा सके।

न्यास की सदस्यता

विश्व हिन्दी न्यास के उद्देश्य और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हमें अनेक सक्रिय सदस्यों की आवश्यकता है। हमारा प्रयास है कि जो भी व्यक्ति न्यास के उद्देश्य, लक्ष्य एवं प्रेरक कार्यों में रूचि रखता है, न्यास का सदस्य बनने के लिए उसका हम सहर्ष स्वागत करते हैं। न्यास का सदस्य बनने के लिए तीन श्रेणियां हैं--

1.	आजीवन सदस्य	(सदस्यता राशि - $400 मात्र)
2.	वार्षिक पारवारिक सदस्य	(सदस्यता राशि - $ 40 मात्र)
3.	व्यक्ति सदस्य	(सदस्यता राशि - $25 मात्र)
4.	छात्र सदस्य	(सदस्यता राशि - $ 10 मात्र)

अनुदानदाता सदस्यों के लिए पांच श्रेणियां हैं:-

1.	हिन्दी रत्न	- $20,000 अथवा इससे अधिक
2.	हिन्दी संरक्षक	- $10,000 अथवा इससे अधिक
3.	हिन्दी हितकारी	- $5,000 अथवा इससे अधिक
4.	हिन्दी मित्र	- $3,500 अथवा इससे अधिक
5.	हिन्दी शुभचिन्तक	- $2500 अथवा इससे अधिक

आप किसी भी श्रेणी का चुनाव कर सकते हैं और अनुदान का चैक कोषाध्यक्ष (Treasurer) श्री प्रदीप अग्रवाल को निम्न- लिखित पते पर भेजने की कृपा करें।

25, Oak Tavern Circle, Branchburg, NJ 08876 USA
Tel: (646) 472-6320 Email: pnagarwal@gmail.com

न्यास की वेबसाइट पर जाकर सदस्यता फॉर्म

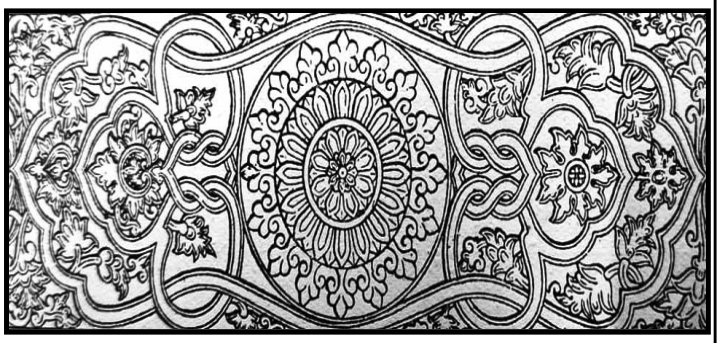

हिन्दी जगत

ISSN 1543-8651 (USA)

जुलाई-दिसम्बर 2025 ● वर्ष : 26 संयुक्तांक : 3-4

सम्पादक मंडल

प्रबंध सम्पादक
डॉ. अंचला सोब्रिन
àßmail : hindinyas@gmail.com, Tel : +1(845) 226-2542

सम्पादक
प्रो. सुरेश ऋतुपर्ण
àßmail: rituparna.suresh@gmail.com, Tel : 91-9810453245

●

सह-सम्पादक
इला प्रसाद
àßmail : ila_prasad1@yahoo.com, Tel : +1(832) 446-3677

निवेदन : कृपया प्रकाशन हेतु अपनी रचनाएँ सम्पादक मंडल के पास भेजें। पत्रिका में व्यक्त विचार स्वतन्त्र रूप से लेखकों के हैं, न्यास का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा प्रकाशित रचनाओं के लिए हम किसी प्रकार का मानदेय देने में असमर्थ हैं।
इस अंक में प्रकाशित रचनाओं के लेखकों के प्रति हम अत्यन्त आभारी हैं।

विश्व हिन्दी न्यास,
World Hindi Foundation
20 Presidential Way Hopewell Junction,
New York, 12533
के लिए
डॉ. सुरेश ऋतुपर्ण, अन्तर्राष्ट्रीय समन्वय-संयोजक द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।
मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एंड प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

अनुक्रम

आपके पत्रों से		2
सम्पादकीय		3
चार कविताएँ	—पंकज सुबीर	4
कवि होना भाग्य है, नीरज होना सौभाग्य	—प्रदीप सरदाना	5
नीरज के गीत	—नीरज	7
दूरदर्शन की 'बुनियाद' का 'युग', 66 साल के सफर में 'हमलोग' कहां आ गए ?	—संजीव श्रीवास्तव	8
गांधी : विश्व में जीवित एक ज्योति	—अर्चना पैन्यूली	10
हम ज़िंदा हैं (कहानी)	—डॉ. शैलजा सक्सेना	12
दिल बहलाव	—बालकृष्ण भट्ट	16
दो कविताएँ	—रचना श्रीवास्तव	16
प्रेमचंद की रचनाओं की प्रासंगिकता	—डॉ. आरती स्मित	17
बच्चों का सवाल	—जसवीर त्यागी	20
'व्हाटसएप' और 'फेसबुक' की जय	—डॉ. संजय कुमार	21
गर्मियों में गाँव जाने का रोमांच	—बुद्धिनाथ मिश्र	22
टूटा तारा (कहानी)	—डॉ. ऋतु शर्मा	23
तूफ़ान का गुजर जाना अच्छा होता है (कहानी)	—सुषमा मुनीन्द्र	24
शिकायत	—सौम्या दुआ	27
बरता हुआ पुल (कविता)	—राजेन्द्र उपाध्याय	27
गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा (संस्मरण)	—विजया सती	28
धैर्य (लघुकथा)	—प्रिया देवांगन 'प्रियू'	30
पीले-पत्ते (कहानी)	—इंतज़ार हुसैन हिन्दी रूपांतर —खुर्शीद आलम	31
गपशप (कविता)	—वीना विभोर	35
मुहावरों से अनोखा न्याय (नाटिका)	—स्नेहलता दीक्षित	36
मुन्नू (कहानी)	—शीला राय शर्मा	38
दो ग़ज़लें	—अनुराग मिश्र ''ग़ैर	40
अनकहे को कहने का माध्यम : कहानी	—डॉ. तारा दूगड़	41
झरने बेकरार हैं (कविता)	—दीपक वोहरा	42
आओ विकास करें (व्यंग्य)	—पूरन सरमा	43
आओ, गजानन आओ (व्यंग्य)	—रामस्वरूप दीक्षित	44
घुमक्कडी दुशाले की अभिलाषा	—सुषमा व्यास राजनिधि	45
विचारों की तरंगे (कहानी)	—शीला मिश्रा	46
तीन कविताएँ	—मंजु मिश्रा	47
कुछ ग़ज़लें	—मुख़्तार अहमद	48

आवरण : ऋचा राव

आपके पत्रों से

हिन्दी जगत पत्रिका का अप्रैल-जून 2025 का अंक भेजने के लिए आपका हार्दिक धन्यवाद। इसमें सम्मिलित प्रेरक कविताएँ, व्यंग्य 'ज़हर के सौदागर' तथा अन्य साहित्यिक रचनाएँ पढ़कर अत्यंत आनंद की अनुभूति हुई और कई महत्वपूर्ण जानकारियाँ भी मिलीं।

विशेष रूप से 'माँ का बैंक अकाउंट' कहानी ने माँ के त्याग, विश्वास और पारिवारिक संस्कारों को अत्यंत सरल किंतु भावपूर्ण भाषा में प्रस्तुत किया है, भाषा सरल है और भावनाएँ गहरी हैं। कहानी पाठक को सोचने और भावनात्मक रूप से जुड़ने पर मजबूर करती है।

कहानी 'संस्कार' आधुनिक जीवनशैली और पारंपरिक मूल्यों के बीच के संघर्ष को संवेदनशीलता से प्रस्तुत करती है। विदेश में रहते हुए भी भारतीय संस्कृति, परिवार और बच्चों के संस्कारों को बनाए रखने की चिंता कहानी का मूख्य भाव है। भाषा सरल, प्रभावपूर्ण और विचारोत्तेजक है। यह रचना पाठक को आत्ममंथन करने और अपने संस्कारों के महत्व को समझने की प्रेरणा देती है।

आशा है कि हिंदी जगत भविष्य में भी इसी प्रकार मूल्यपरक, संवेदनशील और प्रेरणादायी साहित्य से पाठकों को समृद्ध करता रहेगा।

—अनुभव भारद्वाज
नवीन शाहदरा

'हिन्दी जगत' पत्रिका को हमें प्रेषित करने के लिए हृदय से धन्यवाद। यह पत्रिका न केवल भाषा की सुंदरता से परिचित कराती है, बल्कि मूल्यवान विचारों, प्रेरणादायक कविताओं और संवेदनशील लेखों के माध्यम से पाठकों के ज्ञान को भी विस्तृत करती है। आपके द्वारा भेजा गया यह अंक मेरे लिए एक प्रेरणादायी उपहार है, जो मुझे बेहतर लिखने-समझने के लिए उत्साहित करता है। कृपया मेरा सादर आभार स्वीकार करें और भविष्य में भी ऐसे ही साहित्यिक अंकों से मार्गदर्शन देते रहें। धन्यवाद।

—जूली श्रीवास्तव
पूर्वी चम्पाराण (बिहार)

पत्रिका में प्रकाशित लेख 'पश्चिम से पुन: पूर्व की ओर' (शकुंतला बहादुर) न केवल विचारोत्तेजक है, बल्कि भारतीय संस्कृति, योग और भाषा के महत्व को गहराई से रेखांकित करता है। लेख यह स्पष्ट संदेश देता है कि योग, ध्यान और भारतीय दर्शन की वैश्विक स्वीकृति के बाद अब समय आ गया है कि भारत स्वयं अपनी सांस्कृतिक जड़ों को पुन: पहचाने और अपनाएँ। साथ ही, भारतीय भाषाओं विशेषकर हिन्दी के प्रति आत्मगौरव और सम्मान का भाव जागृत करता है।

ऐसी जागरूकता बढ़ाने वाले और सांस्कृतिक चेतना को मजबूत करने वाले लेखकों के लिए हिंदी जगत का योगदान अत्यंत सराहनीय है। यह पत्रिका हिंदी भाषा, भारतीय मूल्यों और बौद्धिक विमर्श को निरंतर समृद्ध कर रही है।

एक बार पुन: इस प्रेरणादायी सामग्री के लिए हिंदी जगत को हार्दिक धन्यवाद।

आशा है कि भविष्य में भी ऐसे उत्कृट लेख पाठकों का मार्गदर्शन करते रहेंगे।

सादर, धन्यवाद।

—शाकिर अली
अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)

'हिन्दी जगत' पत्रिका मेरे परिवार के लिए साहित्यिक सुरुचि भरी सामग्री का उपहार लेकर आता है। आपके चयन एवं सम्पादन के लिए साधुवाद और पत्रिका की निरन्तर प्रगति के लिए शुभकामनाएँ

—प्रो. श्यामसुन्दर पाण्डेय
उज्जैन (मध्य प्रदेश)

हिन्दी जगत (अप्रैल-जून 2025) का सुंदर अंक भेजने के लिए हृदय से धन्यवाद। वास्तव में विविधता से भरे लेख, कविताएँ और यात्रावृत्तांत इस पत्रिका को और पत्रिकाओं से भिन्न बनाते है।

डॉ. ऋतु शर्मा की कविता 'ज़िंदगी', ज्योति कृष्ण वर्मा की पाँच कविताएँ, ललित मंगोत्रा की 'मन का माली' तथा धर्मपाल महेंद्र जैन का सशक्त व्यंग्य 'ज़हर के सौदागर' पढ़कर मन सचमुच समृद्ध हो गया। ऐसी सारगर्भित और संवेदनशील रचनाएं एक ही अंक में पढ़ने का अवसर देने के लिए आपका तहे दिल से आभार। आवरण व अंतिम दोनों पृष्ठों को अच्छे चित्रों की कला से सजाया गया है। कृपया भविष्य में भी अपने श्रेष्ठ साहित्य से यूँ ही मार्गदर्शन करते रहें। धन्यवाद।

—कशिश शर्मा
गीता कॉलोनी, दिल्ली

हिंदी जगत जनवरी -मार्च, 2025 का अंक प्राप्त हुआ। हमेशा की तरह सर्वप्रथम संपादकीय पर नजर गई इसमें सूचना प्रौद्योगिकी को लेकर चिंतन मनन हुआ है साथ ही साहित्यिक परिदृश्य में जो बदलाव हो रहा है उसके ऊपर भी विचार किया गया है। कविताएं सभी अच्छी लगी, छोटी किंतु सारगर्भित हैं। 'भारत की विदेश नीति और हिंदी' तथा 'गांधी का हिंदी चिंतन' जैसे गंभीर आलेख काफी ज्ञानवर्धक थे। जैसा की इस पत्रिका में महान कलाकारों के जीवन और उनके कृतियों की झांकी दिखाई देती है, इस अंक में भी के. एल.सहगल और राजा रवि वर्मा के बारे में विस्तार से जानने को मिला।

आपका बहुत-बहुत धन्यवाद।

—डॉ उर्मिला सिंह
के . ई. एस. श्रॉफ कॉलेज, मुंबई

सम्पादकीय

यह वर्ष हिन्दी के कई महान साहित्यकारों का शताब्दी वर्ष रहा है। इनमें सबसे विशिष्ट नाम है डॉ. रामदरश मिश्र जी का, जिन्होंने अपने जीवन के 101 वर्ष सम्पूर्ण ऊर्जा, उत्साह और गरिमा के साथ पूरे करके 31 अक्टूबर, 2025 को वैकुण्ठधाम को प्रस्थान किया। डॉ. विद्यानिवास मिश्र एवं श्री गोपालदास 'नीरज' ऐसे दो अन्य प्रमुख नाम हैं जिनका शताब्दी वर्ष कई स्तरों पर देशभर में उनकी स्मृति को नमन करके मनाया गया।

श्री नीरज जी के कई स्मृति-बिम्ब मेरे मन में हैं। 1958 के आसपास जब मेरी उम्र लगभग 9 वर्ष की रही होगी, मैंने मथुरा के किशोरी रमण डिग्री कॉलेज के एक कवि-सम्मेलन में पहली बार सुना था। नीरज जी ने लोक-धुन पर आधारित एक गीत झूमते हुए सुनाया था—''ओ मेरे भैया पानी दे, पानी दे गुड़धानी दे,'' जिसकी स्मृति मुझे अभी तक है। इसके कुछ ही वर्षों के बाद मैंने किसी पत्रिका में उनकी एक कविता पढ़ी—''शीघ्र करो मेरे जाने की तैयारी, रथ मेरा बाहर तैयार खड़ा'' मैं ये शब्द स्मृति के आधार पर लिख रहा हूँ, कुछ इधर-उधर भी हो सकते हैं, लेकिन भाव कुछ ऐसा ही था।

उन दिनों कवि सम्मेलनों के मंच पर नीरज की उपस्थिति अनिवार्य-स्थिति थी। मंच संचालक उन्हें 'गीतों का राजकुमार' कहकर सम्बोधित किया करते थे।

उनसे पहले मंच के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि बच्चन जी थे, नीरज के समकालीन कवियों में गोपाल सिंह नेपाली, शिशुपाल सिंह निर्धन, बलवीर सिंह रंग, रामावतार त्यागी प्रभृति और कवि हुए हैं लेकिन भाव, विषय, शिल्प और जीवन दर्शन का जो विस्तार और गहराई नीरज के काव्य में मिलती हैं वह अन्यत्र दुर्लभ ही थी।

नीरज ने जीवन भर अपने गीतों में प्रेम की पावनता और जीवन की नश्वरता को पूरे माधुर्य और सहज दार्शनिकता के साथ गाया है। लेकिन उनकी यह नश्वरता, जीवन के प्रति रागमय आशावादिता का मार्ग ही प्रशस्त करती चलती है—

हर दिवस, शाम ढल जाता है
हर तिमिर धूप में जल जाता है
मेरे मन! इस तरह न हिम्मत हार
वक्त कैसा भी हो, बदल जाता है।

वे बड़े विश्वास और दृढ़ता से कहते हैं—

छिप छिप अश्रु बहाने वालो,
मोती व्यर्थ लुटाने वालो,
कुछ सपनों के मर जाने से
जीवन नहीं मरा करता है।

नीरज के गीतों की सरलता और सहजता ने उन्हें फिल्मी दुनिया के नामचीन निर्देशकों एवं संगीतकारों का भी चहेता बना दिया था। सामान्यत: फिल्मी गीतों का निर्माण संगीतकारों द्वारा बनाई गई धुनों को शब्द देने की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ होता है। लेकिन नीरज के फिल्मी-गीतों का सफर इससे उलटा शुरू हुआ था। सन् 1963 में निर्देशक आर. चन्द्रा उनके गीतों को लेकर एक फिल्म बनाना चाहते थे। फिल्म का नाम भी नीरज ने ही सुझाया था—'नई उमर की नई फ़सल'! नीरज ने आर. चन्द्रा से कहा कि मैं बम्बई आकर गीत नहीं लिख पाऊँगा, लेकिन तुम अपनी पसन्द के गीत चुन लो और उनको संगीतबद्ध करा लो। इस तरह नीरज के कुछ प्रसिद्ध गीत संगीतकार रोशन की धुनों में तैयार किए गए और वे इतिहास बन गए। 'कारवाँ गुजर गया', 'देखती ही रहो न दर्पण तुम' जैसे गीत फिल्म रिलीज होने से पहले ही अत्यन्त प्रसिद्ध हो गए जबकि आर. चन्द्रा की फिल्म सफल नहीं हो सकी।

उनकी इस सफलता के कारण देवानंद और राजकपूर जैसे फिल्मकारों ने उन्हें अपनी फिल्मों के गीत लिखने के लिए आमंत्रित किया। वे लगभग पाँच वर्षों तक मुम्बई में रहकर विभिन्न फिल्मकारों के लिए गीत लिखते रहे और वे गीत आज तक बड़े चाव से सुने जाते हैं। इन गीतों में 'लिखे जो खत तुझे', 'रंगीला रे', 'फूलों के रंग से', दिल आज शायर है', 'शोखियों में घोला जाए', 'जीवन की बगिया महकेगी' जैसे गीत आज भी सदाबहार गीतों की श्रेणी में आते हैं।

नीरज के गीतों में उनके अपने समय के संघर्षशील समाज की व्यथाओं और आकांक्षाओं की, उनके सपनों की, उनकी पीड़ाओं की प्रतिध्वनियाँ भी सुनाई पड़ती हैं।

नीरज का समय प्रगतिवादी-प्रयोगवादी, एवं नई कविता का समय था—तथाकथित प्रगतिवादी आलोचकों ने उनकी कविताओं को समुचित महत्त्व नहीं दिया। उन्हें मंचीय कवि कहकर खारिज किया जाता रहा। शैलेन्द्र को तो वे अपना मानते थे लेकिन नीरज की कविता में समाए प्रगतिशील तत्त्वों की ओर उनकी निगाह नहीं जाती थी।

वस्तुत: नीरज के गीतों में मानव मात्र के प्रति असीम प्रेम विद्यमान है। उन्होंने व्यक्ति प्रेम के साथ ही साथ प्रकृति एवं सम्पूर्ण मानवता के दु:ख-दर्द को रेखांकित करने वाले विद्रोही भाव के गीत भी गाए है। समाज और राष्ट्र को जागरण की प्रेरणा देनेवाले गीत भी सुनाए हैं। राजनीति की विसंगतियों को उजागर करनेवाले गीतों के साथ ही साथ दार्शनिक भाववाले गीतों का सृजन भी किया है। उनके इस शताब्दी वर्ष में उनकी स्मृति को नमन।

वर्ष 2025 अपने अवसान की ओर है और 2026 के आने की आहटें हर ओर सुनाई देने लगी हैं। इसी के साथ विश्व हिन्दी न्यास भी अपनी स्थापना के 26 वर्ष पूरे करके 27वें में प्रवेश कर गया है। एक लम्बा और उत्साह भरा सफर रहा यह। 'हिन्दी जगत' के पाठकों तथा लेखक बन्धुओं की सकारात्मक भूमिका ने हमारे आत्म विश्वास की कभी डिगने नहीं दिया। आगे आने वाले सालों में भी उनका ऐसा ही अनुरागमय प्रोत्साहन हमें मिलता रहेगा, ऐसी कामना करते हैं। इसी के साथ हम अपने सभी पाठक-मित्रों को नव-वर्ष के लिए अग्रिम शुभकामनाएँ भी प्रेषित करते है।

चार कविताएँ

◻ पंकज सुबीर

तुम अकेले हो दुनिया में

समझाया जा रहा है कि
आत्मकेन्द्रित बनो,
केवल और केवल
अपने ही बारे में सोचो,
यह मान कर चलो कि
तुम अकेले ही हो दुनिया में,
उसी प्रकार जिओ...,
भूल जाओ कि तुम्हारे पुरखे
न केवल सोचते थे...
परवाह करते थे...
दुनिया के हर इंसान की
बल्कि सोचते थे
पशु-पक्षियों,
पेड़-पर्वतों के भी बारे में,
उनकी चिन्ता का दायरा
बहुत व्यापक था,

तुम्हारे और तुम्हारे पुरखों के बीच
एक बड़ा कालखण्ड बीत चुका है,
जो उस समय सही था
वह इस समय नहीं हो सकता,
बदलते समय के साथ
बदलना होता है इंसान को
सो तुमको भी बदलना होगा,
जंगलों से लेकर इंसानों तक
कट रहे हैं वे तो कटने दो
नदियों से लेकर मानवता तक
सूख रहे हैं तो सूखने दो,
तुम्हें इस बारे में कुछ
भी नहीं सोचना है,
जंगलों के कटने और
नदियों के सूखने का परिणाम
अभी नहीं कुछ सदियों बाद दिखेगा,
तब तक तुम मर-खप चुके होगे,
इसीलिए
उसके बारे में मत सोचो
जीते रहो केवल और केवल
अपने लिए... ।

केवल अपने लिए देखकर बोलना

देखना
और देखकर बोलना,
सुनना
और सुनकर बोलना,
बहुत अंतर होता है
इन दोनों प्रक्रियाओं में,
दोनों को बोलना
नहीं कहा जा सकता,
यदि आप सब कुछ
देख रहे हैं
और देखने के बाद भी
बोल नहीं रहे हैं
तो इसका मतलब है
आप दृष्टिहीन हैं,
यदि आप सुनकर
बोल रहे हैं
तो उस बोलने का
कोई अर्थ नहीं है,
वास्तव में तो आप गूँगे हैं।

चुप

सबसे अधिक समय तक
चुप रहने वाले लोग
हो रहे हैं सम्मानित,

यह एक अनूठी प्रतियोगिता है—
जहाँ बस रहना होता है
चुप्पी साध कर
अधिक से अधिक समय तक,

सिद्ध करना होता है
कि होते हुए भी नहीं है—
मुँह में ज़ुबान,
गूँगापन सबसे
सुविधाजनक स्थिति है
सत्ता और जनता के बीच की,
यह दोनों के लिए मुफ़ीद होती है,
सबसे असुविधाजनक
होते हैं—शब्द।

विश्वास

अबकी बार
जब गाँव से चला
तो मेड़ पर लगे आम के पेड़ ने
अपनी मंजरियों वाली
सुगंधित छाँव में रोक लिया,

बोला— बेटा!
जब तुम पहले-पहल शहर गए थे
तो हफ़्ते भर में आ जाते थे,
फिर तुम महीने भर में लौटने लगे
और अब साल भर में आए हो,

हो सकता है
अगली बार तुम्हें आने में
एक जन्म लग जाए,
पर विश्वास रखो
मैं तब तक भी प्रतीक्षा करूँगा
और तुम्हें पहचान भी लूँगा,
क्योंकि, मेरी एक-एक शाख़ जानती है
उस स्पर्श को
जो तुम्हारे बचपन में
तुम्हारी देह से
मेरी छाल को मिला था,

तुम्हारी संतानें शायद अब
इस गाँव में न लौटें,
पर मुझे विश्वास है
तुम अगले जन्म में
यहाँ अवश्य लौटोगे। ◻

subeerin@gmail.com
मो. 9977855399

नीरज जन्म-शताब्दी के अवसर पर विशेष आलेख

कवि होना भाग्य है, नीरज होना सौभाग्य

◘ प्रदीप सरदाना

देश ने एक से एक शानदार कवि और एक से एक बेहतरीन गीतकार दिये हैं। लेकिन कवि और गीतकार के रूप में नीरज ने जो कर दिखाया वह बेमिसाल है। कवि के रूप में जिसने भी नीरज को एक बार मंच पर सुन लिया वह उनका हो गया। नीरज विश्व के अकेले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने 70 बरस तक मंच पर राज किया। उधर फिल्मों के लिए लिखे उनके गीतों की बात करें तो उनका लिखा एक एक शब्द मोती है। उनके ज़्यादातर गीत ऐसे हैं जो दिलों में तो उतरने के साथ ही साथ झकझोर कर भी रख देते हैं।

यही कारण रहा जहां उनको मंच पर सुनने के लिए लोग घंटों प्रतीक्षा करते थे। वहाँ फिल्म दुनिया के राज कपूर, देव आनंद, लता मंगेशकर और एसडी बर्मन जैसे दिग्गज भी नीरज की प्रतिभा के कायल थे।

नीरज ने हमेशा अपनी शर्तों के साथ काम किया। अपने मन और काम से कभी समझौता नहीं किया। हालांकि उनकी सेहत बरसों खराब रही लेकिन अंत तक उनकी जीवंतता देखते ही बनती थी।

बता दें नीरज के नाम से मशहूर इन महान कवि-गीतकार का असली नाम गोपाल दास सक्सेना था। लेकिन डॉ हरिवंश राय 'बच्चन' जी से प्रभावित होकर नीरज ने अपने नाम के आगे से सक्सेना हटाकर, गोपाल दास 'नीरज' लिखना शुरू कर दिया। नीरज को अपनी किशोर अवस्था से ही बच्चन जी से बेहद लगाव था। इस कारण वह बच्चन जी से सदा प्रभावित रहे।

नीरज जी से मेरी व्यक्तिगत मुलाकातें तो आठ-दस ही हो पायी होंगी। लेकिन लाल किला कवि सम्मेलन से लेकर रेडियो-टीवी के स्टूडियो कार्यक्रमों मेँ भी उन्हें प्रत्यक्ष सुनने का सौभाग्य मुझे मिला। उनके अंतिम दिनों में उनसे फोन पर भी कई बार बातें हुईं। हम उन्हें अपनी लेखकों, पत्रकारों और कलाकारों की संस्था का 'आधारशिला' शिखर पुरस्कार देना चाहते थे। यह संयोग है कि हमारी संस्था 'आधारशिला' की स्थापना भी मैंने माननीय बच्चन जी के आशीर्वाद से, उनके संरक्षण में 1982 में की थी।

अप्रैल 2018 मेँ नीरज जी ने हमारे 'आधारशिला' सम्मान को अलीगढ़ से दिल्ली आकर लेने की अपनी स्वीकृति भी दे दी थी। लेकिन इसके बाद नीरज जी कुछ ज्यादा अस्वस्थ होते होते 19 जुलाई 2018 को चिरनिंद्रा में लीन हो गए।

जब बस में मिले बच्चन जी

हालांकि उनके साथ बातों की यादों का खजाना मेरे पास है। नीरज जी ने एक बार बताया था कि सन 1942 में एक कवि सम्मलेन में हिस्सा लेने के लिए बस से कुछ कवि बांदा जा रहे थे। उस समय नीरज की उम्र 17 बरस थी। जब गोपालदास बस में चढ़े तो उन्हें सीट नहीं मिल पायी। तब बच्चन जी ने उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया। बच्चन जी की इस बात से ही नीरज काफी प्रभावित हो गए। तब गोपाल दास ने बच्चन जी से कहा कि आज आपने अपनी गोद में बैठाया है तो अब मुझे आशीर्वाद भी दे दीजिये कि आपकी तरह अच्छा लिख सकूँ और आपकी तरह मुझे भी लोकप्रियता मिले। बच्चन जी गोपाल दास की ये बातें सुन मुस्कुराकर बोले- तथास्तु।

बच्चन जी का आशीर्वाद नए नए कवि बने गोपाल दास को इतना फला कि देखते ही देखते उनकी उदास, निराश जिंदगी ही बदल गई। करीब दो तीन साल में ही नीरज ने इतनी कवितायेँ लिख दीं कि सन 1944 में उनका पहला काव्य संकलन 'संघर्ष' भी आ गया। जिसे नीरज ने बच्चन जी को ही समर्पित किया।

नीरज बताते थे- ''मैंने कविताएं लिखनी तो शुरू कर दीं थीं। लेकिन असल में कविता क्या होती है यह मुझे तब पता लगा जब मैंने बच्चन जी की 'निशा निमंत्रण' पढ़ी। उसी के बाद मेरी काव्य रचनाओं में नए रंग आये।''

कवि सम्मेलनों को लोकप्रियता दिलाने में नीरज का योगदान

नीरज ने जब सन 1940 के दशक की शुरुआत में ही कविता पढना शुरू किया तो तब बच्चन जी जैसे कवि अपनी 'मधुशाला' जैसी रचनाओं के कारण इतने प्रख्यात हो चुके थे कि उनको मंच से अपने समक्ष सुनने के लिए लोग बेताब रहते थे। कवि सम्मेलनों को लोकप्रियता का शिखर दिलाने में बच्चन जी और नीरज जी का नाम हमेशा लिया जाता है। यूं मंचीय कविताओं को लोकप्रियता दिलाने में गोपाल सिंह नेपाली का भी बड़ा योगदान है। लेकिन नेपाली जी का निधन 1963 में ही हो गया था। इसलिए आज की पीढ़ी के कम लोग ही उन्हें जानते हैं। यूं बच्चन जी 1935 में 'मधुशाला' लिखने के बाद ही लोकप्रियता के सोपान चढ़ते हुए, शिखर पर पहुँच गए थे। लेकिन बच्चन जी कवि सम्मेलनों को लोकप्रियता दिलाने का सर्वाधिक श्रेय नीरज और नेपाली को देते थे। जबकि नीरज जी ने यह श्रेय हमेशा बच्चन जी को दिया।

नीरज जी ने अपने जीवन में मुक्तक, गीतीकाएं, कवितायें तथा गीतों की एक से एक रचना और खूबसूरत शब्दों की बेमिसाल बानगी प्रस्तुत की। लेकिन उन्हें अपनी जिस कृति से सबसे पहले पूरे देश में अपार ख्याति मिली वह थी-'कारवाँ गुजर गया,गुबार देखते रहे।' यह

गीत नीरज ने 1954 में लिखा था। इस गीत को नीरज ने पहले कुछ कवि सम्मलेनों में प्रस्तुत किया तो 'धर्मयुग' सहित कुछ और पत्र पत्रिकाओं ने इस गीत को प्रकाशित कर इस पर चर्चा भी खूब की। जिससे नीरज एक दम काफी लोकप्रिय हो गए।

इस गीत की लोकप्रियता को तब तो और भी चार चाँद लग गए,जब यह गीत सन 1965 में फिल्म 'नयी उम्र की नयी फसल' में सबके सामने आया। संगीतकार रोशन की धुनों और मोहम्मद रफ़ी के सुरों में ढलकर यह गीत इतना मशहूर हुआ कि इसकी गूँज आज तक कायम है। इसके बाद नीरज मंच के साथ साथ सिनेमा की मायावी दुनिया में भी लोकप्रिय होने लगे।

'लिखे जो ख़त तुझे' ने किया कमाल

सन 1968 में 'कन्या दान' फिल्म में आया नीरज का एक गीत-'लिखे जो खत तुझे, वो तेरी याद में' इतना लोकप्रिय हुआ कि आज भी वह गीत कानों में रस घोलने के साथ दिल-ओ-दिमाग को भी एक सुकून देता है। इस गीत के बाद वह बंबई जाकर रहने लगे थे।

हालांकि मुंबई में नीरज का प्रवास और उनका फ़िल्मी दुनिया से एक गीतकार के रूप में नाता करीब 5 साल तक ही रहा। बाद में उनका मन फ़िल्मी दुनिया में नहीं रमा और सन् 1973 में वह वापस अलीगढ़ आ गए। लेकिन इन कुछ ही वर्षो में नीरज तब के लगभग तमाम गीतकारों के लिए बड़ी चुनौती बन गए। इस दौरान सर्वश्रेष्ठ गीतकार के रूप में लगातार तीन बरसों तक नीरज को फिल्मफेयर का नामांकन मिलता रहा। जिनमें 'काल का पहिया' (फिल्म चंदा और बिजली-1969) के लिए तो उन्हें फिल्मफेयर पुरस्कार मिला। जबकि 'बस यही अपराध हर बार करता हूँ' (पहचान-1970) और 'ए भाई ज़रा देखके चलो' (मेरा नाम जोकर-1971) के लिए भी वह फिल्म फेयर के लिए नामांकित रहे।

यूँ नीरज को देव आनंद की फिल्मों और आरडी बर्मन तथा शंकर जयकिशन की धुनों से सर्वाधिक लोकप्रियता मिली। जिन फिल्मों के लिए नीरज के गीत सदा सदा याद किये जायेंगे, उनमें 'प्रेम पुजारी' सबसे ऊपर है। जिसमें- रंगीला रे, फूलों के रंग से, शोखियों में घोला जाए, ताकत वतन की हम से है, हिंदी फिल्मों के बेमिसाल गीत हैं। साथ ही 'गैम्बलर' (दिल आज शायर है, कैसा है मेरे दिल तू खिलाड़ी,) 'शर्मीली' (खिलते हैं गुल यहाँ, मेघा छाये आधी रात, ओ मेरी शर्मिली) तथा 'तेरे मेरे सपने (जीवन की बगिया महकेगी,ए मैंने कसम ली) जैसी फिल्मों के गीत भी भारतीय सिनेमा के अमर गीतों की माला की एक अटूट कड़ी हैं।

प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति, पीड़ा, जन्म और मृत्यु

नीरज ने प्रेम पर इतना कुछ लिखा है कि उनको एक बड़ा वर्ग प्रेम, सौन्दर्य यानी श्रृंगार रस का कवि ही ज्यादा मानता रहा है। लेकिन ध्यान से देखा जाए तो नीरज के काव्य में काव्य के लगभग सभी प्रमुख नव रस- श्रृंगार, करुण, वीर, हास्य, शांत,भयानक, रौद्र, अद्भुत और वीभत्स के साथ भक्ति और वात्सल्य रस भी देखने को मिलते हैं। यह बात अलग है कि प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति, पीड़ा, जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म को लेकर उन्होंने बहुत कुछ लिखा है। जैसे 'हाँ बादल बिजली चन्दन पानी जैसा अपना प्यार, लेना होगा जन्म हमें कई कई बार, इतना मदिर इतना मधुर तेरा मेरा प्यार।'

उनकी दार्शनिकता भी उनके गीतों में कैसे झलकती है उसकी भी बहुत सी मिसाल हैं. जैसे-

'हूँ बहुत नादान करता हूँ ये नादानी,
बेचकर खुशियाँ खरीदूं आँख का पानी,
हाथ खाली हैं मगर व्यापार करता हूँ,
आदमी हूँ आदमी से प्यार करता हू।'

फिल्म गीतों से इतर अपनी अन्य काव्य रचनाओं में भी नीरज ने एक से एक रंग, एक से एक रस को लिया है। जहाँ उनकी दार्शनिकता के साथ समाज और राजनीति पर भी एक कवि की पैनी नज़र साफ़ झलकती है-

सिर्फ अधिकार की मांग है न लोकतंत्र
हमें कर्तव्य का भी ज्ञान होना चाहिए
आन्दोलन का अर्थ होता है नहीं विध्वंस
उनका मकसद है कि निर्माण होना चाहिए

ऐसे ही नीरज की एक और रचना के अंश हैं, जो उन्होंने तब रची थी. जब सन 1977 में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता पार्टी की सरकार ने राज घाट पर शपथ ली थी-

शपथ उठाई राजघाट पर
उसको भूल न जाना
वादे पूरे नहीं किये तो
होगा नहीं ठिकाना
भूल गए तो माफ़ करेगा
तुम्हें न कभी ज़माना

जीवन, मृत्यु और पुनर्जन्म पर नीरज की अनेक कृतियों में से कुछ ये बेहद ख़ास पंक्तियाँ देखिए—

खोता कुछ भी नहीं यहाँ पर
केवल जिल्द बदलती पोथी
जैसे रात उतार चांदनी
पहने सुबह धूप की धोती
×××
कुछ सपनों के मर जाने से
जीवन नहीं मरा करता
कुछ पानी के बह जाने से
सावन नहीं मरा करता.

उनकी इसी दार्शनिकता पर ये पंक्तियाँ भी अहम हैं, जिनमें कुछ लोग हास्य रस भी देखते हैं-

तन से भारी सांस है, इसे समझ लो खूब
मुर्दा जल में तैरता, जिंदा जाता डूब
जिंदगी को जी भर जिया नीरज ने

गोपाल दास नीरज के पूरे जीवन पर नज़र डालें तो उन्होंने अपने जीवन को जी भर कर

जिया है। यूँ बचपन में उन्होंने कई तरह के दु:ख, कई प्रकार की पीड़ाओं को देखा। उत्तर प्रदेश के पुरावली, इटावा में 4 जनवरी 1925 को जन्मे गोपाल के पिता बृजकिशोर का निधन तभी हो गया, जब वह मात्र 6 वर्ष के थे। नीरज को जिन बातों का दु:ख सबसे ज्यादा रहा उनमें एक यह थी कि पिता के निधन के बाद उनका बचपन नहीं रहा। फिर भी कई परेशानियों के बावजूद गोपाल दास ने अपनी हाई स्कूल की परीक्षा सन 1942 में एटा से प्रथम श्रेणी में पास करके अपनी योग्यता का परिचय सभी को दे दिया। उसके बाद उन्हें दिल्ली के आपूर्ति विभाग में टाइपिस्ट की नौकरी मिल गयी। उसके बाद उनकी आर्थिक समस्याएँ धीरे धीरे कम होने लगीं.इधर वह साथ साथ पढाई करते करते एमए भी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर गए। उधर नौकरियां भी बदलते रहे। कभी दिल्ली, कभी कानपुर, कभी मेरठ तो कभी अलीगढ़। लेकिन बचपन से ही अधिक काम करने के चक्कर में नीरज का स्वास्थ्य कम उम्र में ही खराब होना शुरू हो गया। नीरज जी से जब मेरी उनके स्वास्थ्य पर बात होती थी तो वह कहते थे-'मेरी तबियत की चिंता क्या करनी। मैं तो बचपन से ही बीमार रहा हूँ। लेकिन देखा जाए तो मैं 90 की उम्र में भी औरों से बहुत स्वस्थ हूँ इसलिए मुझे उम्मीद है कि मैं पूरे सौ बरसों तक जीऊंगा'। लेकिन उनका यह सपना पूरा नहीं हो सका। जबकि उन्होंने अपने भरे पूरे परिवार का प्रेम पाया, अपने जीवन में अपना प्रपौत्र भी देखा. पद्मश्री, पद्मभूषण, यशभारती और फिल्मफेयर जैसे कई सम्मान भी पाए। एक कवि, एक गीतकार के रूप में नीरज ने जो अपनी अत्यंतत विशिष्ट पहचान बनाई वह अमिट है। तभी नीरज के लिए कहा भी जाता है- **कवि होना भाग्य है, नीरज होना सौभाग्य।** ❐

संपर्क- मोबाईल- 9555826269
ईमेल- pradeepsardana29@gmail.com

❐ नीरज के गीत

कहानी बनके जिये

कहानी बनके जिये हम तो इस ज़माने में
लगेंगी आपको सदियाँ हमें भुलाने में

न जिनको पीना भी आए न पिलाना आए
शरीफ़ ऐसे भी आ बैठे हैं मैख़ाने में

ग़रीब क्यों न रहे देश की सारी बस्ती
हैं क़ैद खुशियाँ सभी एक ही घराने में

न आग फेंको मेरे मुस्कराते फूलों पर
मिलेगी ऐसी न खुशबू किसी ख़ज़ाने में

जो रोते दिल को हँसाने में इबादत होती
बड़ी है उससे इबादत कहाँ ज़माने में

गिरी हैं बिजलियाँ कुछ ऐसी चमन पर अपने
कि अब तो बच्चे भी डरते हैं मुस्कराने में

है उसके वास्ते पागल कली कली अब तक
कोई तो बात है नीरज के गुनगुनाने में।

आँसुओं का कारवां

गीत जब मर जाएंगे फिर क्या यहाँ रह जाएगा
इक सिसकता आँसुओं का कारवां रह जाएगा।

प्यार की धरती अगर बंदूक से बांटी गई
एक मुर्दा शहर अपने दरमियां रह जाएगा।

आग लेकर हाथ में पगले! जलाता है किसे
जब न ये बस्ती रहेगी तू कहां रह जाएगा।

गर चिराग़ों की हिफ़ाज़त फिर उन्हें सौंपी गई
रोशनी मर जाएगी, बाक़ी धुआं रह जाएगा।

आएगा अपना बुलावा जिस घड़ी उस पार से
मैं कहां रह जाऊंगा और तू कहां रह जाएगा।

सिर्फ धरती ही नहीं, हर शै यहाँ गर्दिश में है
जो जहाँ अब हैं, नहीं वो कल यहां रह जाएगा।

ज़िंदगी और मौत की केवल कहानी है यही
फुर्र उड़ जाएगी चिड़िया, आशियां रह जाएगा।

दर्द की बस्ती

कोई दरख़्त मिले या किसी का घर आए
मैं थक गया हूँ कहीं छाँव अब नज़र आए।

जिधर की सिम्त मेरे दोस्तों की बैठक थी,
उसी तरफ़ से मेरे सहन में पत्थर आए।

दिलों को तोड़ के मंदिर जो बनाकर लौटे
उन्हें बताओ कि वह क्या गुनाह कर आए।

न जाने फूल महकते हैं किस तरह के वहाँ
जो तेरी सिम्त गए, लौटकर न घर आए।

वो क़त्ल किसने किया है सभी को है मालूम
ये देखना है कि इल्ज़ाम किसके सर आए।

शराब ये तो सुबह को ही उतर जाएगी,
पिला वो मय कि नहीं होश उम्र भर आए।

बस एक बिरवा मेरे नाम का लगा देना
जो मेरी मौत की तुम तक कभी ख़बर आए।

वहीं पे ढूँढ़ना नीरज को तुम जहाँ वालो।
जहाँ भी दर्द की बस्ती कोई नज़र आए।

मज़हब

अब तो मज़हब कोई ऐसा भी चलाया जाए
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।

जिसकी खुशबू से महक जाए पड़ोसी का भी घर
फूल इस क़िस्म का हर सिम्त खिलाया जाए।

आग बहती है यहां गंगा में ज़मज़म में भी
कोई बतलाए कहां जाके नहाया जाए।

प्यार का खून हुआ क्यों ये समझने के लिए
हर अंधेरे को उजाले में बुलाया जाए।

मेरे दुख-दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा
मैं रहूं भूखा तो तुझसे भी न खाया जाए।

जिस्म दो होके भी दिल एक हों अपने ऐसे
मेरा आंसू तेरी पलकों से उठाया जाए।

गीत उन्मन है, ग़ज़ल चुप है, रुबाई है दुखी
ऐसे माहौल में 'नीरज' को बुलाया जाए।

❐

दूरदर्शन की 'बुनियाद' का 'युग', 66 साल के सफर में 'हमलोग' कहाँ आ गए ?

▫ संजीव श्रीवास्तव

सन् 1959 से 2025 तक का सफर पूरा करने के बाद दूरदर्शन की पहुंच और ताकत आज भी बनी हुई है। हिंदी फिल्मों के तमाम दिग्गज डीडी के पर्दे को आजमा चुके हैं। श्याम बेनेगल, बीआर चोपड़ा, रामानंद सागर हों या अमिताभ बच्चन, केबीसी का पहला भाग भी डीडी पर ही प्रसारित हुआ था। दूरदर्शन के शानदार 66 साल पूरे होने पर कुछ सुनहरी यादें प्रस्तुत कर रहा हूँ।

दूरदर्शन के 66 साल

भारत में दूरदर्शन सेवा के 66 साल पूरे हो गये। इसकी शुरुआत 15 सितंबर, सन् 1959 को हुई थी। दूरदर्शन इस मौके पर अपना स्थापना दिवस मना रहा है। लेकिन इस अवसर ने एक साथ ढेर सारी यादें ताजा कर दीं। नॉस्टेल्जिया केवल सिनेमा का नहीं होता, अपने टीवी के स्वर्णयुग की तासीर भी कम नहीं है। आज की तारीख में जब लोगों के स्मार्ट फोन और टैब में सूचना और मनोरंजन क्रांति के सारे माध्यम सिमट आये हैं, इसके बावजूद दूरदर्शन के उस युग में मनोहर कहानियों की यादों का अपना-सा गुलदस्ता है। स्मृतियों के रेटिना में बिना ऐन्टेना वे झरोखे झांकते हैं और अस्सी के दशक के दौर में ले जाते हैं। कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी, शरद जोशी और राही मासूम रज़ा जैसे लेखकों की पटकथाओं और संवादों ने दूरदर्शन को ऊँचाइयाँ दीं।

भारत में जब 66 साल पहले दूरदर्शन का जन्म हुआ तो वह भी *ठुमक चलत...* वाली अवस्था में ही था। वह प्रयोग का दौर था। तब वह आकाशवाणी का ही एक विभाग था लेकिन सन् 1976 में जब दूरदर्शन को आकाशवाणी से अलग किया गया तब कार्यक्रमों में विविधता आई। अंग्रेजी, हिंदी में समाचारों के अलावा आम जनता से जुड़े शिक्षाप्रद और मनोरंजक कार्यक्रमों का प्रसारण शुरु हुआ। तब हरेक समाचार वाचक घर-घर में एक स्टार की तरह जाने जाते थे। लेकिन 'रुकावट के लिए खेद है' भारतीय दूरदर्शन का अपना एक स्टेटस सिंबल रहा है, जिससे मुक्ति बहुत बाद में मिली। यह पब्लिक के बीच जुमले की तरह भी इस्तेमाल होता। कभी बिजली के जाने पर तो कभी ऐन्टेना पर कौवे के बैठ जाने पर।

टीवी, ऐन्टेना और बूस्टर का बॉक्स

डीटीएच के युग में ऐन्टेना को जेन जी (Gen Z) शायद भूल गई हो। वहीं जिन लोगों ने कोविड काल में 'बूस्टर' शब्द सुना है, उनके लिए यह नई जानकारी हो कि दूरदर्शन के अस्सी के दशक वाले दौर में इलेक्ट्रॉनिक शॉप से टीवी के साथ ही तीन और चीजें खरीदनी पड़ती थीं; एक ऐन्टेना, दूसरा-स्टेबलाइजर और तीसरा-बूस्टर। यह आमतौर पर एक छोटा-सा बॉक्स होता था। इसे पतले केबल के जरिये टीवी के कोड से कनेक्ट किया जाता था। आमतौर पर जिस क्षेत्र में प्रसारण सेवा धुंधली होती थी या बीच-बीच में रुक जाती थी। तो ऐसे में बूस्टर की मदद से प्रसारण को दुरुस्त किया जाता था। आड़ी-तिरछी कंपकंपाती तस्वीरें सीधी और साफ हो जाती थी और गर्ररररर वाला साउंड भी ठीक हो जाता था लेकिन टीवी स्क्रीन पर चिपकने वाली 'रुकावट के लिए खेद है' की प्लेट का कोई विकल्प नहीं था।

'रुकावट के लिए खेद है' अब मजा देता है

तब ये रुकावटें भले ही मजा किरकिरा कर देती थीं लेकिन आज उन रुकावटों की यादें मजा दोगुना कर देती हैं। एक-एक कर याद आते हैं. हमलोग, बुनियाद, मालगुडी डेज, मुजरिम हाजिर हो, मृगनयनी, मुंगेरी लाल के हसीन सपने, मैला आंचल, कक्काजी कहिन, युग, टीपू सुल्तान की तलवार, अलिफ लैला, मिर्जा गालिब, भारत-एक खोज, चंद्रकांता, चाणक्य, सर्कस, उड़ान, फौजी, व्योमकेश बख्शी, शक्तिमान, नुक्कड़, सिगमा, कब तक पुकारूं, नीम का पेड़, फिर वही तलाश, विक्रम बैताल, तेनाली रामन, वागले की दुनिया, ये जो है जिंदगी वगैरह। इन धारावाहिकों को पूरा परिवार एक साथ देखता था। अड़ोस-पड़ोस के वे लोग भी जुटते थे जिनके घर टीवी नहीं होता था। सच, सामूहिकता और पारिवारिकता का वह सुनहरा नज़ारा था। लेकिन जैसे ही 'रुकावट के लिए खेद है' की प्लेट चिपकती थी, घर में छततोड़ू ठहाके भी गूंजते थे।

दिलचस्प बात ये कि 'क्योंकि सास भी कभी बहू थी' के जमाने में आते-आते जब हफ्ते तक भी कहानी एक कमरे से निकल कर दूसरे कमरे तक भी ठीक से नहीं पहुंचती, तब के सीरियलों में हर हफ्ते कहानी काफी आगे बढ़ जाती थी। दर्शक देखना चाहते थे कि पिछले हफ्ते के बाद इस हफ्ते कहानी में क्या मोड़ आने वाला है। कहानी और संवाद आम जनजीवन में गॉसिप का हिस्सा बनते थे। स्कूल, कॉलेज, दफ्तर, पार्टी में बातचीत के प्रिय विषय होते थे। सभी अपनी-अपनी पसंद के सीन, संवाद, कहानी का जिक्र करते, आज तो संवाद ही खो गये हैं। उसकी जगह बैकग्राउंड म्यूजिक और क्लोज इमोशंस के बदले स्पेशल इफेक्ट्स ने ले लिये हैं।

चित्रहार, रंगोली और रविवार की फिल्में

हालाँकि तब भी दूरदर्शन पर सिनेमा से जुड़े कार्यक्रमों की अपनी सी लोकप्रियता थी। फिल्मी

गीतों के कार्यक्रम मसलन 'चित्रहार', 'रंगोली' और 'शो-रील' के अलावा शनिवार, रविवार की शाम पुरानी फिल्मों का भी अपना सा क्रेज रहा है। सिनेमा हॉल में जाने से बचने का यह सबसे सरल जरिया था। ना समय और ना ही पैसे खर्च होते थे। लेकिन जिसके घर बड़ा रंगीन टीवी का सेट होता था, उसके खर्च जरूर बढ़ जाते थे, पड़ोसियों के मेहमान बनते देरी नहीं लगती। कभी-कभार तो यह विवाद भी हो जाता कि एक तो टीवी दिखाओ। ऊपर से चाय और नाश्ता कराओ। ऐसे में बिजली का जाना या रुकावट के लिए खेद बहुत मददगार साबित होते।

तब रंगीन टीवी मोहल्ले का स्टेटस सिंबल भी कहलाता था। जिसके घर रंगीन टीवी मतलब इलाके में उसका सबसे बड़ा रुतवा। किस कंपनी का रंगीन टीवी सबसे उत्तम है। अच्छी क्वालिटी की तस्वीरें दिखाता है, इस पर भी खूब चर्चा होती थी। दूरदर्शन के कार्यक्रमों की लोकप्रियता की बदौलत शादी में रंगीन टीवी की जबरदस्त डिमांड हो गई थी। 'दुल्हन ही दहेज है' का नारा समाज में तभी से चल रहा था लेकिन दहेज में लड़के वाले, लड़की वालों के घर दहेज के सामान की जो लिस्ट भेजते थे, उसमें रंगीन टीवी सबसे टॉप पर होता था। कई बार तो ब्रांड के नाम भी लिखे होते थे। सच, शादी के सीजन में रंगीन टीवी की मांग ने भी इसकी सेल बढ़ाई।

'एशियाड' के बाद रामायण-महाभारत

वैसे दूरदर्शन के इतिहास में सबसे बड़ी क्रांति आई. एशियाई खेलों के आयोजन के अलावा रामायण और महाभारत से। सन् 1982 में दिल्ली में एशियाई खेलों का आयोजन हुआ था। और इसी के साथ टेलीवीजन के प्रसारण रंगीन हो गये। इस दौरान टीवी सेट खूब बिके। इसके बाद रामानंद सागर की रामायण का प्रसारण सन् 1987-88 के बीच हुआ और फिर बी.आर. चोपड़ा निर्देशित महाभारत आई, जिसका प्रसारण सन् 1988-89 के बीच हुआ था। रामायण और महाभारत ने दूरदर्शन की पहुँच गाँव-गाँव तक बढ़ा दी। भारतीय दूरदर्शन के इतिहास में ये तीन ऐसे अहम पड़ाव थे जिसने भारतीय जनमानस को झकझोर दिया। तमाम घरों में टीवी सेट पहुंच गया।

एक जानकारी के मुताबिक साल 1983 में देश के करीब 28 प्रतिशत दर्शकों तक टीवी की पहुँच थी जो दो साल बाद ही 1985 तक आते-आते करीब दोगुनी हो गई। दूरदर्शन की बढ़ती ताकत और लोकप्रियता को देखते हुए 1984 में ही महानगरों के लोगों की रुचि और जीवन शैली को ध्यान में रखते हुए डीडी मेट्रो का प्रसारण भी शुरू कर दिया गया था।

वैसे एक तथ्य यह भी है कि 83 से 85 के बीच टीवी सेट्स की संख्या बढ़ने की एक वजह पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या और उससे जुड़ी कवरेज भी थी। 31 अक्टूबर सन् 1984 को इंदिरा गांधी की हत्या हुई थी। उस घटना से जुड़ी कवरेज को बहुत लोगों ने देखा। जिनके घरों में टीवी नहीं था। उन्होंने भी देखना चाहा। लिहाजा तब दुकानों में टीवी की मांग बढ़ी। कुछ ऐसा ही वाकया 21 मई, सन् 1991 को पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की हत्या और उससे जुड़ी कवरेज के समय भी देखा गया था।

बॉलीवुड को टीवी ने दी बड़ी चुनौती

सिनेमा, खेल और धार्मिक धारावाहिकों के साथ दूरदर्शन ने फिल्म इंडस्ट्री को चुनौती दे दी। फिल्मों में संयुक्त परिवार के अब तक जो विषय हुआ करते थे, उसे बदला गया, दूरदर्शन की बढ़ती चुनौती का ही असर था कि सलमान खान की 'मैंने प्यार किया' और आमिर खान की 'कयामत से कयामत तक' जैसी कहानी पेश की गई, जिसके जरिए, नई पीढी को आकर्षित करने और उन्हें सिनेमा हॉल तक खींच कर लाने का तरीका ईजाद किया गया। संयुक्त परिवार यहाँ भी था लेकिन केंद्र में नई पीढ़ी की प्रेम कहानी थी। उदारीकरण की आहट का दौर था। कहानी, किरदार, गीत-संगीत और संवाद में इसका असर दिखने लगा था।

दूरदर्शन पर ही बिग बी का के. बी. सी. शो शुरू हुआ

साल दो हजार तक आते-आते सदी के महानायक अमिताभ बच्चन भी दूरदर्शन के छोटे पर्दे पर आ चुके थे। बहुत कम लोगों को याद होगा कि 'कौन बनेगा करोड़पति' जैसा अत्यंत लोकप्रिय गेम शो दूरदर्शन पर ही प्रारंभ हुआ था। केबीसी का प्रसारण डीडी के इतिहास का चौथा अहम पड़ाव था। एशियाड, रामायण, महाभारत के बाद चौथा पड़ाव अमिताभ बच्चन का शो केबीसी, हालांकि केबीसी अब निजी चैनल पर प्रसारित होता है, जिसके भी शानदार पच्चीस साल पूरे हो चुके हैं। इसकी बुनियाद दूरदर्शन पर ही पड़ी भी।

आज भी दूरदर्शन की गांव-गांव तक पहुंच

आज की तारीख में भी दूरदर्शन अपने विभिन्न प्लेटफॉर्म और कार्यक्रमों के जरिए अपनी मजबूत पकड़ बनाये हुए है। यहां कई कार्यक्रम पसंद किये जा रहे हैं। लेकिन आज भी लोग अस्सी और नब्बे के दशक के विज्ञापनों के स्लोगनों और समाचार वाचकों मसलन प्रतिमा पुरी, शम्मी नारंग, जीवी रमण, अनिवाश कौर सरीन, सलमा सुल्तान, विनोद दुआ, सरला माहेश्वरी, शोभना जगदीश, मंजरी जोशी, वेद प्रकाश, शुभेंदु अमिताभ आदि को या उनकी आवाज को नहीं भूले हैं। शम्मी नारंग की आवाज आज भी हर रोज मेट्रो में लाखों लोग सुनते हैं। अगला स्टेशन राजीव चौक है, दरवाजे बाई ओर *खुलेंगे...* जबकि आज दूरदर्शन पर प्रसारित होने वाले सीरियलों की पहचान निजी चैनलों की चकाचौंध में गुम हो गई है, आखिर क्या वजह है, इस पर भी विचार किया जाना चाहिए।

❐

sanjeevfilmcriti@gmail.com
Mob. 9313677771

गांधी : विश्व में जीवित एक ज्योति

◻ अर्चना पैन्यूली

लो, फिर गांधी जयंती आ गई है। आज गांधी जी को जन्मे हुए 156 वर्ष (1869-2025) और उन्हें शहीद हुए 77 वर्ष (1948-2025) हो चुके हैं। परंतु आश्चर्य यह है कि गांधी जी जैसे मरते ही नहीं, बल्कि समय के साथ वे और भी जीवित होते जा रहे हैं।

आज एक विडंबना यह है कि जहाँ एक ओर दुनिया भर में गांधी को शांति, अहिंसा और सत्याग्रह का प्रतीक मानकर सम्मानित किया जाता है, वहीं कुछ लोग उनके योगदान को नकारने लगे हैं। यहाँ तक कि उनके हत्यारे नाथूराम गोडसे के दृष्टिकोण को समझने और औचित्यपूर्ण ठहराने का प्रयास भी किया जाता है। यह प्रवृत्ति केवल गांधी के अनुयायियों को आहत ही नहीं करती, बल्कि हमारे राष्ट्रीय विवेक पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा करती है।

सच यह है कि गांधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम को केवल राजनीतिक आंदोलन न बनाकर नैतिक और सामाजिक चेतना का आंदोलन बनाया। उन्होंने लाखों-करोड़ों आम भारतीयों को आत्मसम्मान और स्वराज्य का अर्थ समझाया। सत्य और अहिंसा उनके हथियार थे, और इन्हीं के बल पर उन्होंने अंग्रेज़ी साम्राज्य को चुनौती दी। गांधी के आंदोलन, उनके सत्याग्रह और अनशन एक ऐसी मशाल बने, जिसने सम्पूर्ण विश्व को सत्य और अहिंसा की शक्ति का बोध कराया।

हाँ, गांधी भी इंसान थे और उनसे भी निर्णय की भूल-चूक हो सकती थी। परंतु यह कहना कि उन्होंने देश का नुकसान किया, एक अत्यंत संकीर्ण और ऐतिहासिक दृष्टिहीन आरोप है। यदि उन्होंने देश को नुक़सान पहुँचाया होता, तो नेल्सन मंडेला, मार्टिन लूथर किंग जूनियर, और विश्वभर के असंख्य आंदोलनों ने गांधी को अपना मार्गदर्शक क्यों माना होता?

गांधी हमें यह सिखाते हैं कि राष्ट्र केवल सीमाओं और राजनीति से नहीं बनता, बल्कि नैतिकता, करुणा और जनसामान्य के सशक्तिकरण से बनता है। इसलिए आज जब समाज में विभाजन, हिंसा और असहिष्णुता की आंधी चल रही है, तब गांधी की प्रासंगिकता पहले से कहीं अधिक गहरी और ज़रूरी हो गयी है।

विदेश में गांधी का अनुभव

1997 में मेरा मुंबई (भारत) से डेनमार्क आना हुआ। यहीं आकर मैंने वास्तव में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गांधी जी का प्रभाव महसूस किया। भारत में हम गांधी जी को सिर्फ इतिहास या पाठ्यपुस्तकों तक सीमित समझते थे, लेकिन विदेश में उनकी उपस्थिति और सम्मान को प्रत्यक्ष देखकर उनकी महानता का गहरा बोध हुआ।

विदेशों में मैंने गांधी जी के नाम पर सड़कें और पार्क देखे। स्कूल-कॉलेजों की दीवारों पर उनकी तस्वीरें और अनमोल विचार अंकित देखे। विदेशी लेखकों की 'लाइफ मैनेजमेंट' पुस्तकों में उनका उल्लेख और सूक्तियाँ पढ़ीं। पुस्तकालयों की अलमारियों में उन पर लिखी अनेक पुस्तकें सजी दिखीं। अक्सर बस या ट्रेन में सहयात्रियों को जब पता चलता कि हम भारत से हैं, तो वे सहज ही गांधी जी का नाम लेते और कहते कि वे उन्हें बहुत सम्मान देते हैं।

रोम की यात्रा के दौरान एक दिन सड़क पर मंडराते एक व्यक्ति ने हमें देखते ही दोनों हाथ जोड़कर बार-बार 'महात्मा गांधी, महात्मा गांधी' कहना शुरू कर दिया। उस पल ने हमें यह अहसास दिलाया कि **गांधी सिर्फ भारत के नहीं, बल्कि पूरी दुनिया के हैं।**

लंदन के प्रसिद्ध मैडम तुसाद संग्रहालय में जब गांधी जी की मोम की प्रतिमा देखी, तो मन गर्व से भर उठा। एक इंटरनेशनल स्कूल में शिक्षण के दौरान जब दीवार पर विश्व के महान नेताओं की तस्वीरों के साथ गांधी जी की तस्वीर देखी, तो हृदय गदगद हो गया—वाह! हमारें राष्ट्र पिता यहाँ भी मौजूद हैं। तस्वीर के नीचे उनका एक अनमोल विचार लिखा था : **'उस आज़ादी का कोई अर्थ नहीं, जो मुझे गलती करने की आज़ादी नहीं देता।'**

डेनमार्क में गांधी पार्क

डेनमार्क जैसे छोटे से देश में भी गांधी जी के सम्मान में 'गांधी पार्क' स्थापित है। 1983 में भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की डेनमार्क यात्रा के दौरान यहाँ उनकी प्रतिमा स्थापित की गई थी और यह पार्क महात्मा गांधी को समर्पित कर दिया गया। लंबे समय तक इसे 'गांधी लॉन' कहा जाता रहा और हर वर्ष यहाँ गांधी जयंती मनाई जाती रही।

भारत में गांधी जयंती हम राष्ट्रीय अवकाश के रूप में घर बैठकर मनाते थे, परंतु डेनमार्क में इसे एक सार्वजनिक समारोह की तरह आयोजित होते देखा।

स्थानीय भारतीयों के प्रयास, विशेषकर संस्था 'DIVA': डेनिश इंडियन वॉलंटरी एसोसिएशन के सहयोग से, इस पार्क को 15 जून 2016 को आधिकारिक तौर पर 'गांधीपार्क' का दर्जा मिला। डेनिश में 'गांधी पार्कन' कहते हैं। उस दिन कोपेनहेगन की खुशनुमा गर्मियों में पार्क का भव्य उद्घाटन हुआ। इस अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम भी हुए, जिनमें भारतीय शास्त्रीय नृत्य ने विशेष आकर्षण बटोरा। कई गणमान्य व्यक्तियों के साथ भारत के राजदूत श्री राजीव शाहारे भी इस कार्यक्रम में उपस्थित थे। यह क्षण डेनमार्क में रहने वाले सभी भारतीयों के लिए गौरव का विषय था।

अक्टूबर से डेनमार्क में ठंड शुरू हो जाती है। इसी ठंडी हवाओं के बीच हर वर्ष गांधी जयंती का आयोजन कोपेनहेगन स्थित 'गांधी पार्क' में होता है। पार्क में स्थापित गांधी जी की प्रस्तर-प्रतिमा पर फूलों की मालाएँ चढ़ाई जाती हैं, पुष्प अर्पित होते हैं और सभी श्रद्धा से उन्हें नमन करते हैं।

कार्यक्रम में भावपूर्ण भाषण होते हैं, सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ दी जाती हैं। भारतीय दूतावास की ओर से आगंतुकों के लिए गर्म-गर्म चाय और स्वादिष्ट नाश्ते की व्यवस्था की जाती है। इस अवसर पर न केवल भारतीय प्रवासी समुदाय, बल्कि अनेक देशों के लोग एकत्रित होते हैं—मिलते हैं, बातचीत करते हैं और मिलकर गांधी जी का स्मरण करते हैं।

देशभक्ति के गीतों और गांधी जी के प्रिय भजनों और संदेशों से वातावरण गूंज उठता है। कुछ पलों के लिए लगता है, गांधी पार्क केवल एक उद्यान नहीं, बल्कि एक जीवंत सांस्कृतिक और आध्यात्मिक केंद्र बन गया हो। गांधी जी की विश्व को सबसे अनमोल धरोहर— बिना अस्त्र उठाए संग्राम करने की शक्ति और अहिंसा का अमर संदेश। सो ये पल गांधीजी की विरासत और अंतर्राष्ट्रीय अहिंसा दिवस को श्रद्धांजलि देने के भी होते हैं।

गांधी और हिटलर—विलोम चरित्र

डेनमार्क में रहते हुए मैंने डेनिश भाषा सीखी। पाठ्यक्रम की एक पुस्तक में विश्व की दो बहुचर्चित हस्तियों—हिटलर और गांधी—का उल्लेख देखकर मैं चकित रह गई। पुस्तक के बाएँ पृष्ठ पर हिटलर की तस्वीर, जीवन परिचय और उसके निंदनीय कार्यों का विवरण था। दाएँ पृष्ठ पर गांधी जी की तस्वीर, जीवन परिचय और उनके महान कार्यों का संक्षिप्त वर्णन। दोनों को स्पष्ट रूप से एक-दूसरे का विलोम बताया गया था।

- गांधी ने अपनी लड़ाई में अहिंसा का पथ अपनाया, हिटलर ने हिंसा का।

- गांधी ने शोषितों और अल्पसंख्यकों का उत्थान किया, हिटलर ने उनका दमन किया।
- गांधी ने लोगों को स्वतंत्रता दिलाई, हिटलर ने उनकी स्वतंत्रता छीनी।
- गांधी ने समाज को एकजुट कर स्वतंत्रता के महायज्ञ में लगाया, हिटलर ने निर्दोष यहूदियों को कंसंट्रेशन कैंपों में मौत के घाट उतारा।
- गांधी ने अल्पसंख्यकों की रक्षा करते हुए अपने सीने में गोली खाई, हिटलर ने उनके सीने में गोली दागी।

इस तुलना ने मुझे गहराई से प्रभावित किया। यह एहसास हुआ कि गांधी की अहिंसा और सत्य की राह आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी उनकी जीवनकाल में थी।

गांधी जी का जीवन और उनके विचार केवल भारत तक सीमित नहीं रहे। उन्होंने दुनिया को यह दिखा दिया कि बिना हथियार उठाए भी अन्याय और दमन की दीवारें गिराई जा सकती हैं। यही कारण है कि नेपोलियन जैसे योद्धाओं से उनकी तुलना हुई, और आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिक भी उन्हें युगपुरुष मानने लगे।

गांधी जी न तो शासन में थे और न ही किसी ऊँचे सरकारी पद पर। उनके पास केवल देश-विदेश के करोड़ों अनुयायियों का विश्वास और सम्मान था। यदि गोडसे या कुछ अन्य लोग गांधी जी की नीतियों से असहमत थे, तो उन्हें नैतिकता की लड़ाई विचारों से लड़नी चाहिए थी, न कि उनकी हत्या करके।

गांधी जी की हत्या भारत के स्वतंत्रता संग्राम और अंग्रेज़ी हुकूमत से मिली आज़ादी पर एक गहरा आघात थी।

आज जब रूस-यूक्रेन युद्ध, भारत-पाकिस्तान के संघर्ष, इज़राइल-फ़िलिस्तीन टकराव जैसी घटनाएँ पूरी दुनिया को झकझोर रही हैं,जब हिंसा, असहिष्णुता और वैमनस्य का ज़हर समाज में फैल रहा है—तब गांधी हमें याद दिलाते हैं कि सच्ची शक्ति तलवार या बंदूक में नहीं, बल्कि सत्य, करुणा और अहिंसा में निहित है।

उनकी प्रासंगिकता केवल अतीत की बात नहीं है, बल्कि वर्तमान और भविष्य की ज़रूरत भी है। 'गांधी शब्द' अपने आप में एक गहरी ऐतिहासिक, वैचारिक और भावनात्मक ध्वनि रखता है। गांधी जैसे विचार, मूल्य और जीवन-दर्शन क्या वास्तव में मृत्यु को पार कर जाते हैं?

वास्तव में गांधी दिवगंत नहीं हुए,वे आज भी राष्ट्र की धड़कन में हैं। वे हर उस इंसान में मौजूद हैं जो निडर होकर सत्य बोलता है, जो अन्याय के सामने शांतिपूर्वक खड़ा होता है, और जो नफरत के बदले प्रेम का रास्ता चुनता है। ❐

Email: apainuly@gmail.com
Mobile: 0045 71334214

हम ज़िंदा हैं

❑ डॉ. शैलजा सक्सेना (कनाडा)

''यह सामान बाहर रखने का है, तुमने फिर इसे यहीं रख दिया सुजेटा'' डेसरीन ने सुजाता पर झुँझलाते हुए कहा।

''मुझे पता है डेसरीन, अभी बाहर रख दूँगी''

''जब पता है तो रखा क्यों नहीं?'' डेसरीन को लगता है सुजाता को या तो बात समझ नहीं आती या उसे नियम पालन में रुचि नहीं! ऐसा इस दुकान में तो चलेगा नहीं। एक सप्ताह से सुजाता इस दुकान में काम कर रही है और अभी तक उसे यह समझ नहीं आया कि कौन सा सामान कहाँ रखा जायेगा। वह मन में कुड़कुड़ा रही है, ''इन विद्यार्थियों को जब काम चाहिए तो बड़ी-बड़ी बातें और बाद में.... !''

सुजाता ने खिड़की से बाहर नज़र डाली, सामने एक जीप और उसके पास 6 लड़कों का झुंड खड़ा था, अधिकांश पूरे या आधे नशे में थे। बाहर खड़े सिगरेट या गांजा, भगवान जाने क्या तो फूँक रहे थे। सुजाता को एक बड़े ड्रम में रखे झाडू और दुकान खुलने और उसके प्रचार के तीन बोर्ड बाहर रखने थे। इन सामानों को बाहर रखना मतलब लोगों को बताना कि दुकान खुली हुई है, आपका स्वागत है। बोर्ड भी साइडवॉक पर ठीक उस जगह रखने थे, जिसके सामने जीप खड़ी है। उसे इन नशेड़ी लड़कों के झुंड के जाने का इंतज़ार था। डेसरीन ने उसे बाहर झाँकते देखा तो पूछा,

''क्या है? क्या हुआ बाहर?''

''हुआ नही, बस देख रही थी कि ये लोग हटें तो सामान बाहर रख दूँ''

डेसरीन ने उड़ती सी नज़र बाहर डाली,

''ये लोग ग्राहक हैं, हमारे 'साइन' रखने का इंतज़ार कर रहे हैं, जाओ रख कर आओ''

सुजाता को डेसरीन का स्वर बिल्कुल अच्छा नहीं लगा, पर वह दुकान के मालिक की बेटी है, सारा प्रबंध उसी के हाथों है, उसकी बात टाली नहीं जा सकती। अनिच्छा से वह ड्रम लेने आगे बढ़ी। डेसरीन ने फिर टोका,

''पहले साइन''

सुजाता कट गई। रख तो रही है वह पर इसे टोकना ज़रूरी है। ये नेटिव इंडियंस!' कुमार सही कहता है, इनलोगों का व्यवहारबहुत अजीब है, ये आदिवासी लोग! जिन्होंने थोड़ी तरक्की कर ली है वे दूसरों पर ऐसे धौंस जमाते हैं जैसे सब इनके नौकर हों, शेष सभी सरकार से पैसे ऐंठते हैं, दिन भर नशा, चोरी और मार-पीट करते हैं'। सुजाता को कहीं और नौकरी मिल जाती तो इस डेसरीन यैलोहॉर्न के यहाँ नौकरी करने क्यों आती? ज़रूरत अपनी है सो मन मार कर काम कर रही है।

साइन बाहर रखते ही वे लोग ज़ोर-ज़ोर से बातें करते हुए दुकान में घुसे। सुजाता कुछ आशंकित हुई पर वे लोग अपने में मगन, कोक की बोतलें, ब्रेड, मफ़िन, चिप्स, बीयर की बोतलें सब उठा कर काउंटर पर लाने लगे। डेसरीन ने सुजाता को काउंटर पर जाकर सामान का हिसाब करने को कहा, दुकान अभी खुल ही रही है और वह गोदाम से सामान निकाल कर खाली शेल्फ़ों पर रखने में व्यस्त थी। सुजाता ने सब सामान का मशीन से विक्रय किया, 85 डॉलर का बिल! आँखें सामान पर ही टिकी रहीं। उनमें से एक ने 100 का नोट आगे बढ़ाया। वह 15 डॉलर वापस करने को थी कि वे लोग सामान उठा कर अधीरता से बाहर की ओर चलने लगे।

'सर, आपके शेष डॉलर'

'वे तुम्हारे लिए 'प्रिटी लेडी' कह कर सबसे बाद वाले ने मुस्कुरा कर उसे देखा और बाहर चल दिया।

'लेकिन सर...' जब तक वह कुछ कह पाती वे लोग बाहर हो चुके थे। वह तेज़ी से काउंटर से बाहर निकली, उसे नहीं चाहिए किसी की टिप, और प्रिटी लेडी कहने पर तो बिल्कुल भी नहीं पर बाहर जाकर वह छह नशेड़ी लड़कों से इस बात पर बहस करने की हिम्मत भी नहीं रखती।

डेसरीन गोदाम से सामान उठाये बाहर आ रही थी, उसने सुजाता के आखिरी वाक्य को सुना, पूछा

''क्या हुआ? बिल चुकता किया?''

''15 डॉलर की टिप दे गये, उसे ही...''

डेसरीन हँसी,

''लो, सुबह ही तुम्हारी बोहनी भी अच्छी हो गई, इसमें परेशानी क्या है?''

सुजाता कुढ़ गई।

''उसे नहीं चाहिए बोहनी! काम किया, पैसा मिला, इन लड़कों की टिप के पीछे क्या भावना हो, क्या पता?''

लंच के समय डेसरीन के पिता और एक अन्य कर्मचारी के आ जाने पर सुजाता अपना खाने का डिब्बा और कॉफ़ी लिए पास के बाग की बेंच पर आकर बैठ गई। थोड़ी देर में डेसरीन भी सिगरेट फूँकती, कॉफ़ी लिए आ गई और बैठने के लिए पूछ कर वहीं बैठ गई। दो ही बैंच हैं इस छोटे से हिस्से में।

''सिगरेट से तुम्हें परेशानी तो नहीं?'' डेसरीन ने पूछा।

सुजाता ने 'न' में गर्दन हिलाई। डेसरीन 45 के आसपास होगी। चौड़े चेहरे पर आदिवासी जीवन का रूखापन, पतले लंबे बालों की दो चोटी में झाँकते कुछ सफ़ेद बाल, कानों में पंखों वाले इयररिंग, जीन्स पर चौड़ी बेल्ट और पैरों में बूट्स। कुल मिला कर एक ऐसा व्यक्तित्व जो 'टफ़' या कड़ा लगता है जिससे बस काम

से काम ही रखा जा सकता है, मन की कोई बात नहीं की जा सकती। वैसे भी उम्र का अंतर है उनमें। सुजाता 20 की है, अभी कुछ समय पहले ही भारत से आई है 'स्टूडेन्ट्स' वीसा पर। पी आर जल्दी मिल जाये इसलिए मेनीटोबा शहर के ब्रेंडन इलाके में आ बसी है जहाँ नेटिव इंडियंस के बहुत से कैम्प हैं। गूगल से वह इनके बारे में कुछ जानकारी भी लेकर आई है, जैसे कि नेटिव इंडियंस कैनेडा के मूल निवासी हैं, उनकी संख्या अब बहुत कम है और वे शहर से दूर रहते हैं, सरकार उन्हें हर माह मुआवज़ा देती है, आदि-आदि पर यह उसकी उम्मीद में न था कि वे इस शहर में इतनी बड़ी संख्या में रहते हैं और इतना नशा करते हैं।

कुमार अक्सर गाली देता है इन्हें, कुमार उनके ही शहर से है और यहाँ एक वर्ष से अधिक से है। उसे चिढ़ रहती कि सरकार इन 'निकम्मों' को (वह यही कह कर इन्हें पुकारता) इतना पैसा देती है, रहने के लिए फ्री की जगह मिली हुई है, अगर इसका आधा भी हम इंडियन को दिया होता तो हमने मेहनत करके इस देश को कहाँ से कहाँ पहुँचा देना था और एक ये हैं कि इतना मिलने के बाद भी पी, फूँक कर गड्ढे में जा पड़े हैं। वह कहता, ''मरती हुई कौम है यह.. इसलिए इन्हें तरक्की की परवाह नहीं।'' उसकी सलाह सबको इनसे दूर रहने की थी, खासकर लड़कियों को और इनके कैंप में तो कभी भूल कर न जाना, सारे नये आये लोगों को वो यही कहता।

डेसरीन कॉफ़ी के घूँट लेते हुए उसे ध्यान से देख रही थी मानों जाँच रही हो। उसने पूछा,

''अपने देश से कब आईं?''

''पाँच महीने हुए''

''क्या करने?''

''ऑफ़िस मेनेजमेंट पढ़ने आई''

डेसरीन व्यंग्य से हँसी,

''अच्छा, मुझे लगा हार्वर्ड से पीएच डी करने आई हो, तुम्हारे देश में यह कोर्स होता नहीं होगा, तभी यहाँ आईं ...''

सुजाता कट कर रह गई। कम से कम लंच पर तो चैन लेने देती। मन किया,कैसे इसे नीचा दिखाऊँ, बोली

''तुमने क्या पढ़ाई की?''

''मुझे पढ़ाई की क्या ज़रूरत, मेरे पिता का व्यापार है, मुझे कौन सा किसी का नौकर बनना है पर हाँ बता दूँ, अनपढ़ नहीं हूँ, बारहवीं पासकी है।''

इस समय बी.ए. की डिग्री बिना तो सुजाता भी बारहवीं पास ही मानी जायेगी। उसे और कुछ नहीं सूझा, चुप रह गई। डेसरीन ने फिर कोंचा, ''सब कुछ न कुछ करने आते हैं और फिर यहीं रह जाते हैं, शर्त लगा कर कह सकती हूँ तुम भी इसी इरादे से आई हो, वरना कैनेडा के इस हिस्से में रहने का क्यों सोचतीं?''

डेसरीन की नज़रें मानो उसके दिमाग का एक्स-रे कर रही हों। दूर सामने पहाड़ थे, उसकी चोटी बर्फ़ से ढकी थी, इधर मैदान में गुनगुनी धूप सर्द मौसम को पिघला रही थी पर डेसरीन की निगाहों के सामने सुजाता बर्फ़ हो गई।

सोचने लगी, ''इतनी सीधी बेइज़्ज़ती कौन करता है?'' गरम कॉफ़ी ही हलक में उँडेलने लगी ताकि यहाँ से शीघ्र उठ सके।

''थैंक्यू फ़ॉर द गुड कंपनी, (अच्छे साथ के लिए धन्यवाद)'' चिढ़ कर उसने कहा और भीतर जाने के लिए उठ खड़ी हुई, जाने के लिए मुड़ी ही थी कि

'ओ सुनो' डेसरीन की आवाज़ पर वह पलटी, सोचा, 'अब क्या?'

''अभी लंच खत्म होने में समय है, तुम्हें भगाने के लिए वह सब नहीं कहा, पर कही तो सच्चाई ही'' डेसरीन भी खत्म सिगरेट एश ट्रे वाले डिब्बे में डाल, बोलते हुई उठ खड़ी हुई। सुजाता कुछ बोलने को हुई कि डेसरीन ने कहा,

''तुम हमें 'जज' करती हो और हम तुम्हें, तुम हमारे पीठ पीछे जो कहते या सोचते हो, वह क्या हमें पता नहीं? आज सुबह उन लड़कों को देखते ही तुमने उन्हें गुंडा, मवाली नहीं मान लिया था? मेरे बारे में भी तुम क्या सोचती होगी, जानती हूँ लेकिन इसका हम पर कोई असर नहीं होता। पर तुम्हें भी जान लेना चाहिए कि तुम्हें भी लोग जज करते हैं, तुम्हारे बारे में भी बात करते हैं। जानती हो हमें भी लोगों ने आगाह किया था कि एक इंडियन को काम पर मत रखो पर हमने तुम्हें नौकरी में लिया''

सुजाता डेसरीन की बातें सुन कर चलने को हो ही रही थी कि अपने को काम पर रखे जाने के बारे में सुनकर रुक गई, मुँह से हठात निकला,

''क्यों?''

''क्यों, क्या? तुम्हें नहीं पता कि पहले ब्रिटिश लोग दुकानों की तख्ती पर क्या लिख कर टाँगते थे, 'इंडियन और कुत्तों को भीतर आने की इजाज़त नहीं' अब टाँगते नहीं पर सोच तो वही है।''

सुजाता को कुछ क्षण तो समझ नहीं आया कि क्या कहे। वह हतप्रभ थी कि बात कहाँ से कहाँ पहुँच गई, फिर धीरे से कहा, ''तुम्हें उनका यह कहना या सोच सही लगती है?''

डेसरीन ने मुँह सिकोड़ा, ''जिन्होंने हमारी हज़ारों साल की सभ्यता और संस्कृति को ही खत्मकर दिया, उनकी सोच सही कैसे लगेगी?''

अब सुजाता अस्पष्टता के कोहरे में! ''यह कहना क्या चाहती है?''

डेसरीन ने उसके चेहरे को पढ़ा, बोली, ''यही कह रही हूँ कि दूसरे की नज़र से आपस में हमें एक दूसरे को नहीं तौलना चाहिए और वो भी इन गोरों की नज़र से, जिन्होंने हमेशा अपने को ऊँचा माना और दूसरों को नीचा। हमारे बारे में उन्हीं का लिखा इतिहास तुम पढ़, सुन कर आई हो न? तो जान लो कि तुम्हारे बारे में अपनी सोच उन्होंने हमें पढ़ाई कि तुम सँपेरो, साधुओं, चोरों और हज़ारों देवी देवताओं वाली असभ्य संस्कृति के लोग हो। पर हम लोग इनके झूठ को जान गए हैं, इनके छलावे

भरे शब्दों पर हम विश्वास नहीं करते। हम जानते हैं दुनिया भर में राज करने का उनका लालच और उसके लिए उनके षड़यंत्र और क्रुरता!लेकिन क्या तुम इंडियन्स, इनके झूठ को जान पाये हो? गोरी चमड़ी के पीछे के कालेपन को काला कह पाये हो?''

सुजाता समझ नहीं पाई कि क्या कहे? डेसरीन ने कड़वे सच को बहुत तीखी भाषा में कह डाला था, जैसे भरी बैठी हो! सुजाता ने सोचा...''हम भारतीय कम से कम दूसरों के साथ तो सधा हुआ बोलते हैं, विनम्र सा, ताकि उन्हें बुरा न लगे, पर यह?'' डेसरीन के शब्दों में ताने भी थे और चुनौती भी, उसे गहरा धक्का लगा, तिलमिलाई सी वह धीरे-धीरे भीतर चली गई। दिमाग हिल गया...!

इस घटना के बाद सुजाता अपने में गुम सी हो गई। कॉलेज में भी कम बोलती, काम से काम बस..! उसके साथ ही कमरा साझा करने वाली दो लड़कियों ने भी यह महसूस किया। उसने काम की अधिकता की आड़ ली पर मन कसमासाता! दिमाग सब कुछ अधिक जाँचनेलगा। जब बनी बनाई मान्यताओं पर चोट पड़ती है, मुँह पर आपकी अपनी संस्कृति और देश के बारे में दुनिया की छिछली सोच बताई जाती है तो धक्का तो लगता ही है! इस सबके बीच उसने डेसरीन से दूर रहने की कोशिश की।

दो सप्ताह बाद 21 जून,को था, फ़र्स्ट फ्री नेशन या ''नेशनल इन्डीजिनस पीपल डे''! इस दिन के विशेष कार्यक्रम में सुजाता को भी दुकान में काम करने के कारण निमंत्रण मिला। वह इन लोगों से दूर रहने का तय कर चुकी थी पर निमंत्रण को ठुकरा न सकी।

कम्यूनिटी हॉल में अनेक जनजातियों के चीफ़, अलग-अलग तरह के कपड़ों में, उन समुदाय के लोगोंसे हॉल भरा हुआ। कार्यक्रम में एक विशेष पुस्तक का विमोचन हुआ और पुस्तक पर लंबी चर्चा भी। पुस्तक क्या थी, इंडिजिनस लोगों के अनेक कबीलों की पूरी इनस्लाइकोपीडिया! साथ चला स्लाइड शो! पहले कैंप साइट्स की फ़ोटो। फ्री में मिले उन घरों के दृश्य दिखाए गए जिन पर कुमार जैसे लोग तंज कसते थे, लेकिन यह क्या? स्लाइड शो उन घरों का बुरा हाल दिखा रहा था जहाँ एक घर में 12-14 लोग रहते थे। घर क्या, टीन के शेड, जैसे रिफ़्यूजी कैंप में होते हैं। उसी छोटे से घर में बड़े-बूढे, जवान, बच्चे सब किसी तरह रह रहे थे। अनेक कैंप पक्की सड़कों से नहीं जुड़े थे, अस्पताल, स्कूल, दुकानें सब बहुत दूर! बस उजाड़, सपाट जगहों में खड़े टीन के ये उदास घर, जहाँ सबको धीरे-धीरे समाप्त हो जाने को छोड़ दिया गया हो। नूनावट और यैलोनाइफ़ जैसे राज्यों में बर्फ़ की अधिकता से ये कैंप और भी अलग-थलग पड़े हुए थे, कोई कहीं जाना चाहे तो भी जाना मुश्किल! सामान्य संपर्क से कटे, सामाजिक प्रगति से दूरनिराश, पीले से चेहरों,बुझी, बेजान आँखों वाले युवा, जोबेरंग भविष्य से आँखें चुराने के लिए,नशे में अपना वर्तमान डुबा रहे थे! चेहरे पर चेहरा, तस्वीर के बाद तस्वीर स्लाइड पर उभर रहीं थीं...जिनकी कभी पूरी धरती थी, जो पेड़ों, पहाड़ों के बीच सिर उठाए घूमते थे, जो प्रकृति से एक होकर, खुली हवा में जीते थे, उन्हें मानों दड़बों में बंद कर दिया गया था और मेहमान बन कर आये लोग उनकी सारी धरती पर कब्ज़ाकर के बैठ गये।

सुजाता इन घरों की हालत देख कर सिहर उठी। फ्री में मिलने वाले सरकारी पैसों से शराब और नशा करने वाले लोगों की जो छवि उसके मन में थी, उनके उजड़ने की कहानी पर्दे पर खुल रही थी। फिर वक्ता बदले और कई लोग मंच पर आ गए। उन्होंने पुस्तक के अगले अध्यायों में अभी हाल में मिली बच्चों की अनपहचानी कब्रें मिलने के आँकड़ों के साथ-साथ उन जगहों की तस्वीरें दिखानी प्रारंभ की गई, जहाँ ये कब्रें मिलीं थीं। उसकी यूनिवर्सिटी-ब्रेंडन के पास 100 कब्र मिलने के दृश्य थे। ये बच्चे क्रिश्चयन मिशनिरियों द्वारा, ज़बरदस्ती घरों सेउठा कर ले जाए गए,प्रगति के नाम पर ब्रिटिश सरकार ने इन्हें इनके परिवारों से बहुत छोटी आयु में ही दूर कर रेसिडेंशियल स्कूलों में डाल दिया ताकि इन्हें 'सभ्य' बनाया जा सके। उन्हें अपनी मातृभाषा बोलने पर मारा-पीटा जाता, लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार ही नही बलात्कार तक...फिर इन बच्चों में से हज़ारों की संख्या में बच्चे मर गये... कैसे? किसी को पता नहीं? माता-पिता को सूचित करना भी ज़रूरी नहीं समझा गया। स्कूल अंत होने पर जब बच्चे नहीं आये तो माता-पिता प्रतीक्षा करते रहे, पूछने पर उन्हेंकभी संतोषजनक उत्तर नहीं मिला, मिली हैं तो एक लंबे समय बाद ये बेनाम कब्रें....! एक के बाद एक अनेक शहरों में मिले कब्रिस्तान, एक के बाद एक ऐसे रेसिडेंशियल स्कूलों के चित्र और रजिस्टर पर रजिस्टर भर के बच्चों के नाम स्क्रीन पर उभर रहे थे। सुजाता स्तब्ध थी...ऐसा भी होता है क्या? और हद तो यह कि 1970 तक ऐसे स्कूल चल रहे थे। वक्ता बता रहा था 6000 बेनाम बच्चों की कब्रें खोदी जा चुकी हैं, और काम अभी जारी है।

कमरे में एक तीव्र रुलाई फ़ूटी..! अनेक माता-पिता अपने बच्चों के नाम पहचान रहे थे। उनकी आँखें इन बच्चों का रास्ता देखते हुए बूढ़ी हो गईं थीं।.... पीछे से अनेक वाद्य यंत्रों की धीमी आवाज़ उठने लगी, ढ़पली की थाप, पैरों में बंधे घुंघरुओं और अनेक प्रकार के मोती और परों में सजे लड़के-लड़कियाँ रुदन के स्वर में गीत गाते, हल्के कदमों से मंच पर थिरकते से आ गए। हॉल में अनेक लोग रुदन स्वर में गीत गाने लगे। स्लाइड शो पर कब्रें ठहरी हुईं थीं...। सुजाता की आँखें बहने लगीं। उनके रुदन का स्वर उसके गले और फ़ेफ़ड़ों से होता पेट और रीढ़ के बीच काँपने लगा। नेटिव इंडियन्स की सभ्यता को नष्ट करने की कितनी बड़ी योजना, कितना भीषण नर संहार!! किसलिए? ज़मीन हड़पने के लिए? एक ही लक्ष्य विजेता का...सब कुछ पर अधिकार! सबको गुलाम बना लो, जो न बने, उसे मार दो, इनका इतिहास मिटा दो, युवाओं के आत्मविश्वास को तोड़ दो, बच्चों को अपनी भाषा तक भुलवा दो ताकि वे गुलाम बने रहें...पर

यहाँ तो हज़ारों को स्कूल में ही मार दिया गया!! ... इन मासूम चेहरों और षड़यंत्रों से अनजान बच्चों को मारते या मरने को छोड़ते क्या इन मिशनिरियों में दया, करुणा कुछ नहीं जागी होगी?

सुजाता का मन हिलक कर रोने को हो गया तो वह तेज़ी से उठकर बाहर आ गई। दीवार का सहारा ले, स्कॉर्फ़ को मुँह पर रख, उसने अपनी रुलाई की आवाज़ छुपाने की कोशिश की। वह कहना चाहती थी कि वह उनका दर्द पहचानती है, गुलामी का यह नरसंहार उसके भारत ने भी तो झेला है...हज़ारों, लाखों लोग मारे गये... भारत में सदियों से हुए अनेक हत्याकांडों को उसके देश ने झेला है। ऐसे ही चित्रों वाली कहानी तो उसकी माँ-दादी भी सुनाती थीं। पाकिस्तान और भारत विभाजन के चित्र, कुँओं में औरतों की लाशों के चित्र, ट्रेन में कटे अंगों वाले लोगों के चित्र! या जनरल डायर का जलियाँवाला बाग कांड और भी कितना कुछ!! सुजाता कितनी लाशें गिने? दुनिया के किस-किस हिस्से की लाशें गिने? ब्रिटिश सरकार के अत्याचार उसके इंडिया के लिए कहानी नहीं, सच्चाई है पर इन नेटिव इंडियन्स की सच्चाई उससे भी अधिक मर्मभेदी है।

सुजाता की आँखों में बच्चों की कब्रें और शरणार्थियों की चिताएँ गड्डमड्ड होने लगीं। हर इंसान को, दूसरों के दुख में कोई निजी दुख मिल ही जाता है और फिर पता नहीं लगता कि वह अपने दुख के लिए रो रहा है या दूसरे के...!

डेसरीन बाहर आई, उसने सुजाता को दीवार के सहारे खड़े देखा तो पास चली आई। उसकी आँखें भी नम थीं। सुजाता ने मुँह मोड़ कर अपने आँसू पौंछे ताकि डेसरीन न देखे। पर डेसरीन ने देख लिया, रोना भी और छुपाना भी। उदास स्वर में बोली, ''जिनको अपने हत्यारे होने पर मुँह छुपाना चाहिए, वे तो चौड़े होकर घूमते हैं और हम अपने रोने को भी छिपाते रहें, सभ्य होने का यह कौन सा तरीका है, कभी समझ नहीं आया''

सुजाता को चुप देख कर आगे बोली, ''रोना ज़रूरी है, ऐसे संवेदनशील दृश्य देख कर भी जो न रोये, वह तो इंसान नहीं। आदमी की क्रूरता देख कर पहाड़ रोते हैं, झरनों के रूप में और आसमान रोता है बारिश के रूप में। हम तो रोते हुए भी गाते हैं और गाते-गाते रो पड़ते हैं। पिछले 450-500 वर्षों से रोते हुए अब रोने का स्वर भी बदल गया है पर हम फिर भी रो रहे हैं! गा रहे हैं! तुम जानती हो भीतर अभी वे क्या गा रहे थे?''

सुजाता के मना में गर्दन हिलाने पर डेसरीन हल्के स्वर में, उसी सुर में अंग्रेज़ी में गाने लगी, ''ओ हवाओं, जब तुम मेरे

बच्चे को मरते देख रहीं थीं
तब आँधी बन कर
हत्यारे पर क्यों नहीं टूटीं?
ओ बादलों, तुम तो मेरे भाई थे,
तुम हत्यारों पर क्यों नहीं फटे?
क्या पता मेरा बच्चा सुबह मरा
या शाम को या आधी रात को?
क्या वह मरने से पहले रोया था?
वह भूखा तो नहीं मरा था न?
क्या हत्यारों ने उसे खाना दिया था?
मेरे बच्चे, तू मत भूलना कि ज़िंदा रहेगा तू
मेरे खून में साँसें लेता।
मेरे दुलार में ज़िंदा रहेगा तू
इस धरती पर फैली घास को
हवा जब सहलायेगी,
तब तू महसूस करेगा मेरा स्पर्श...''

गाते-गाते डेसरीन एकाएक चुप हो गई। सुजाता को गीत के शब्द और सुर चाकू की तरह चीर रहे थे...वह डेसरीन के निकट खिसक आई थी। डेसरीन का शरीर ही मानों उस काँपते हुए सुर में बदल गया था जो वह गा रही थी।

'डेसरीन...' सुजाता ने फुसफुसा कर कहा।

''मेरी लैसली की जब लाश मिली थी, तब मेरे गले से यह गीत निकला था।''

सुजाता को हैरानी और दुख से उसे देखा तो डेसरीन बोली, ''लेसली, मेरी बेटी, 14 साल की थी..! चार रातें घर नहीं आई, फिर मिला बलात्कार किया हुआ उसका क्षत-विक्षत शरीर...सभ्य लोगों के शहर में, ब्रेंडन यूनिवर्सिटी के पास...जहाँ तुम पढ़ती हो।''

सुजाता सिहर उठी। यह अपनी बेटी खो चुकी है??? ओह! इसके कड़ेपन के पीछे कितना दर्द छिपा है और रूखे चेहरे के पीछे कितने आँसू, कौन जानता था। उसने आगे बढ़ कर डेसरीन का हाथ पकड़ लिया, ''आई एम सो सॉरी डेसरीन...मुझे नहीं...''

डेसरीन ने सुजाता का हाथ पकड़े हुए ही बीच में उसे रोक दिया, ''तुम क्यों सॉरी कह रही हो? तुमने मारा था क्या? या तुमको लगता है कि तुम उन्हीं हत्यारों की जमात की हो?''

सुजाता अटपटा गई। डेसरीन की बातें.. इतनी भेदक क्यों होती हैं? यह तो कहा ही जाता है 'सॉरी फ़ॉर योर लॉस...'

डेसरीन उसकी आँखों में देख रही थी, बोली, ''शब्दों को सोच कर बोलना चाहिए। सभ्य लोग बोलते बहुत हैं पर जो बोलते हैं, उसका बिल्कुल उलट करते हैं। सॉरी उन्हें बोलना चाहिए जिन्होंने मेरी लेसली को मारा, पर वे नहीं बोलेंगे। हमारे जीवन की कोई कीमत उनके लिए नहीं! और वे सॉरी बोल भी लेंगे तो क्या हमारे बच्चे ज़िंदा हो उठेंगे? मारने के बाद पश्चातापहीन सॉरी कहना कोई समाधान नहीं? दंड देना समाधान है पर वह कोई देगा नहीं, क्योंकि अपराध को पूरी तरह स्वीकार किसी ने कभी किया ही नहीं। न लेसली के हत्यारों ने और न इन बेनाम कब्रों वाले बच्चों के हत्यारों ने! दंड स्वीकार करते तो कम से कम अपराध की स्वीकृति होती, हमें न्याय मिलता, हमारा जीवन आगे बढ़ता, लेकिन हमें मिला 'सॉरी'!! उससे क्या होगा? जानती हो जिसको न्याय नहीं मिलता, वह अन्याय के दुख में हमेशा हाथ-पैर मारता, अतृप्त, वहीं

अटका रहता है, उसका 'क्लोजर' (उबरना) कभी नहीं होता!''

गहरी साँस लेकर डेसरीन बोली, ''सुजेटा, तुम इंडियन, ब्रिटिश सरकार से स्वतंत्र हो गये पर हम तो टिव्स 'इंडियन एक्ट' की कैद में आज भी हैं। ये पंख जिन्हें हम सिर पर सजाये घूमते हैं, कभी हमारी उड़ान के सूचक थे, अब पिंजड़े में सिर मार-मार कर टूटने की कहानी कहते हैं। हर घर में कई बेनाम कब्रें हैं लेकिन हम उन कब्रों को अपने सीने में लिए आज भी ज़िंदा हैं, हम ज़िंदा हैं और रहेंगे...! हम पर तरस मत खाना,लेकिन हमारी पीठ पर अत्याचारियों के कोड़ों के निशान ध्यान से देखना और कोड़ा पकड़े हाथों को भी। सुजेटा, यह कोड़ा नये-नये रूप रख कर आयेगा पर उसकी चोट का दर्द और उसके निशान कभी नहीं बदलेंगे। सॉरी मत कहो, बस इस बात को याद रखो..' कहते-कहते डेसरीन ने उसकी पीठ थपथपाई और वापस हॉल की ओर बढ़ गई।

हॉल के भीतर ढ़पली का स्वर बढ़ रहा था, सुजाता के मन में डेसरीन के शब्दों की सच्चाई उस स्वर के साथ थप-थप-थप कर गूँजती रही। ❐

Mob. +1 (905)580-7341

धरोहर : लघुकथा

दिल बहलाव

❐ बालकृष्ण भट्ट

एक स्कूल मास्टर हाथ में बेंत लिए लड़कों को पढ़ा रहे थे... बेंत सीधा कर बोले— ''हमारे बेंत के कोने के सामने एक गधा बैठा हुआ है, वह बड़ा ढीठ है... एक लड़का फौरन कह उठा— ''मास्टर साहब बेंत के दो कोने होते हैं, आप किस कोने का जिक्र कर रहे हैं।''

मास्टर बेचारे शर्मिंदा होकर चुप हो गए। ❐

(पुण्यतिथि 15 जुलाई पर विशेष)

दो कविताएँ ❐ रचना श्रीवास्तव (अमेरिका)

पानी की जगह

पानी सब जगह है
पर वहाँ नहीं, जहाँ होना चाहिए
नलों में, नदी, तालाब पोखरों में।
इनके तलों में गर्द उड़ रही है
नमी को खोजती प्यास की जड़ें
बहुत गहरे तक जाती है
परन्तु निराशा की मकड़ी
मक्खी की तरह
उसको अपने जाले में उलझाकर
दम घुटने तक चूसती रहती है।
कहीं किसी मोहल्ले में
उस बदसूरत-सी टोंटी को
बहुत ही उत्सुकता से
निहार रही होती हैं खूबसूरत लड़कियाँ
जिस प्यार से देखा होगा कभी
उन्होंने अपने पहले प्रेमी को
एक बूँद के गिरते ही
बढ़ जाती है धड़कनें
जैसे पहली छुअन पर बढ़ी होंगी साँसे
सोचती हैं, क्यों नहीं आ जाता पानी
जैसे वक़्त-बेवक़्त आ जाते हैं आसूँ
उनकी आँखों में
लड़कियाँ जो समय बढ़ने से
बन गई हैं औरतें
सोचती हैं
हमारे आँसुओं की तरह
सूख गया है ये भी शायद
बातों का शोर है
पानी की आस में
बाल्टियाँ, मटके, कनस्तर
सब टकाराकर आवाज़ें निकाल रहे हैं
और पानी,
होने वाले झगड़े की आशंका से
छुप गया है
पाइप के नीचे दूर, बहुत दूर
अब गायब है पानी
हर जगह से!

डूब जाना

डूबना एक शब्द है
एक ऐसा शब्द
जिसको चाहे, जैसे चाहे
प्रयोग कर रहा है।
डूबना भी कई तरह का होता है।
कोई क़र्ज़ में डूबा है
तो कोई फाईलों के ढेर में डूबा है
डूबा तो वो भी है
जो किसी के प्रेम में डूबा है।
कविता शब्दों के तालाब में उतरती है
और भावों में डूब जाती है
मधुशाला की मधु के नशे में
तो लगभग सारी दुनिया ही डूबी है
दौलत का नशा
मधु के नशे से कहाँ कम है?
इसमें डूबा व्यक्ति
खुद को भगवान समझने में देरी नहीं करता
लोग तो चुल्लू भर पानी में भी
डूबने को कह देते हैं
ये बात अलग है
कोई चुल्लू भर पानी में डूबता नहीं है
क्योंकि शर्म ही कहाँ बची है लोगों में
कोई खुद डूबो रहा।
इस तरह डूब तो हर व्यक्ति रहा है
हर कोई इसको,
अपने हिसाब से प्रयोग किये जा रहा है
किसी ने इस शब्द की मर्जी जानने का
प्रयास ही नहीं किया
कि इसका कब और कहाँ
उपयोग में जाने का मन है
या फिर मन है भी की नहीं
डूबना शब्द पर
दुनिया का बहुत भार है। ❐

rach_anvi@ yahoo.com

प्रेमचंद की रचनाओं की प्रासंगिकता

❑ डॉ. आरती स्मित

बीसवीं सदी में समाज की अलसाई चेतना को झकझोरते, मनोभाव, पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय दशा पर चिंतन-मनन करने के लिए जनचेतना को विवश करने वाले हिंदी कथा साहित्य-संसार के युगपुरुष प्रेमचंद के रचना संसार की विशालता और विविधता, समाज और उसका चरित्र, मन और जीवन से जुड़े मुद्दे एक साथ राष्ट्र के आंतरिक सरोकार बन जाते हैं। इनमें से कोई अधिक, कोई कम गति में है, मगर ठहरा हुआ कोई नहीं। सबमें गति है, जीवन है। जीवन है तो जुझारूपन भी है। भाग्य है तो कर्म भी है और कर्म से भाग्य को बदलने का संकल्प भी है। मान्यताओं से प्रेम भी है तो चेतना पर मिट्टी डालने वाली रूढ़ियों के प्रति आक्षेप भी है। कहा जा सकता है कि कथासम्राट प्रेमचंद ने अपनी कलम को हल बनाकर कथा साहित्य की तत्कालीन ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर सामाजिक/राष्ट्रीय सरोकारों के बीज से पल्लवित कहानी,उपन्यास, लेख आदि को जिस कलात्मक कौशल के साथ जनसमूह के समक्ष रखा, विशेषकर, उत्तर भारतीय समाज के हर वर्ग/ वर्ण एवं क्षेत्र-गाँव-क़स्बे से लेकर महानगर तक में विचरते जीवन के स्पंदन को जिस विराटता के साथ कहानियों एवं उपन्यासों में संजोया है, वह अद्भुत है।

प्रेमचंद का साहित्य के प्रति समर्पण उन्हें 'कलम का सिपाही' बनाता है तो उनका युगबोध उन्हें युगनायक के रूप में रचता है।उनकी कथाकृतियों को कालजयी माना जाना सुखकर है किंतु उन रचनाओं में जिन समस्याओं की ओर कथाकार ने ध्यान खींचा, निराकरण के लिए चिंतन किया और चाहा कि सुधी समाज आने वाले दिनों में इस पर विचार मंथन करे, दु:खद है कि वे समस्याएँ आज भी सुरसा की तरह मुँह खोले जनजीवन की त्रासद स्थिति की ज़िम्मेदार बनी हुई हैं।... और इस नाते आज प्रेमचन्द अपेक्षाकृत अधिक प्रासंगिक हैं।

अज्ञेय ने अपने लेख 'प्रासंगिकता का प्रश्न' में लिखा है, 'प्रासंगिकता की दो प्रमुख कसौटियाँ हैं— मानव की स्वाधीनता तथा सर्जनशीलता। ये दोनों मानव को अधिक मानव बनाती हैं और इससे उनकी अर्थवत्ता बनी रहती है। ... जो स्वाधीनता तथा सर्जनशीलता को बढ़ाता है, पुष्ट करता है, स्थायित्व और सुरक्षा देता है, वह सब मूल्यवान और प्रासंगिक है, शेष सब अप्रासंगिक हैं।'

प्रेमचंदकी रचनाएँआज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं जितनी कि एक सदी पूर्व थीं। स्वतंत्र भारतीय समाज ने बाह्य कलेवर बदला है,आत्मा नहीं। वर्तमान स्थितियाँ दिनोंदिन गोविंद के गद्दी पर बैठने के बाद होनेवाली दुर्दशा की गाथा सुना रही हैं। ज़मींदारी गई, पूँजीपति वर्ग समृद्ध होता गया। गरीब किसान-मजदूर ही नहीं, निम्न मध्यवर्गीय कर्मचारी भी आज त्रस्त है। जॉन की आत्मा गोविंद में समाई है। आम जन की मूलभूत ज़रूरतों और समस्याओं से ध्यान हटाकर एक बार फिर धर्म की आड़ में नफ़रत की फसल लहलहाने लगी है। 'ग़बन' के देवीदीन का कथन आज अक्षरश-सत्य सिद्ध हो रहा है--'ऐसे सुराज से देश का क्या कल्याण होगा ? तुम्हारे और तुम्हारे भाई-बंदो की जिंदगी भले आराम और ठाठ से गुजरे, पर देस का तो भला न होगा।' यह कथन वर्तमान दुरवस्था को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है। चंद पूँजीपतियों के हाथों राष्ट्रीय संपत्ति सिमटती जा रही है, जबकि देश की तीन-चौथाई से अधिक आबादी मूलभूत आवश्यकताओं को भी पूरा करने में असमर्थ हो रही है। महँगाई मनमाने ढंग से बढ़ती जा रही है। बेरोज़गारी पहले की अपेक्षा कई गुना बढ़ी है तो अपराध भी बढ़े और स्वार्थपरता तथा तलुवा चाटने की प्रवृत्ति भी।

प्रेमचंद की रचनाओं में उपस्थित केंद्रीय स्वर में,परिवार में बुजुर्ग की स्थिति, स्त्री शिक्षा, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, वेश्या वृत्ति,स्त्री-पुरुष के बीच समता का अधिकार, दहेज प्रथा, दलित समस्या, किसान समस्या , पूँजीवाद का विरोध, राष्ट्रीयता का मूलार्थ, स्वराज तथा समतामूलक समाज की व्यवस्था सहित अन्यान्य कई ऐसे सरोकार हैं जिन्हें उनकी कलम ने बेबाकी से उद्घाटित किया है।

किसान समस्या की ओर दृष्टि डालें तो पाएँगे कि किसान समस्याओं पर तो उन्होंने अलग-अलग बिंदुओं से निरीक्षण-परीक्षण करके लिखा। इसके साथ ही उनकी स्थिति-परिस्थिति, रंगभूमि मनोविज्ञान, संस्कार—सब उनकी रचनाओं में गूँथे नज़र आते हैं। किसान में भी उन्होंने विभिन्न वर्गों के किसानों को साधा है। अगस्त 1933 में अपने लेख 'कृषि सहायक बैंकों की जरूरत' में प्रेमचंद लिखते हैं— 'कृषि भारत का मुख्य व्यवसाय है, पर उसे नोंचने वाले तो सब हैं, उसको प्रोत्साहन देने वाला कोई नहीं। उसे भूखों मरकर, पैसे-पैसे के लिए महाजन का मुँह देखकर, अपना जीवन काटना पड़ता है। किसान से मज़दूर बनते छोटे किसानों की दुर्दयनीय अवस्था और उस अवस्था से मुक्ति की ख़ातिर सहकारी बैंक तथा अनाज की खरीदारी के लिए सरकारी व्यवस्था की उनकी पेशकश आज़ादी के अठहत्तर वर्षों में भी पूरी न हो सकी। छोटे किसान चैन की नींद सोने के हक़दार ही नहीं, ऐसा प्रतीत होता है। बाज़ारवाद के समर्थक समाज ने यह मान लिया है कि अन्नदाता को हमेशा फटेहाल ही होना चाहिए। गोदान का 'होरी' मरता रहे और 'गोबर' भागता रहे, यह उनकी नियति बन चुकी है। आज स्थिति यह है कि न कोई किसान अपनी संतान को खेती में उलझाना चाहता है, न नई

पीढ़ी खाली ज़ेब खेती के भरोसे रहना चाहती है। आदिवासी किसान की संतान पिता को बेरोजगार मानती है, क्योंकि उसके घर में मुश्किल से पेट भरने लायक दाने तो हैं मगर अन्य खर्चों के लिए रुपये नहीं।

पिछले एक दशक में किसानों की आत्महत्या में हुई बढ़ोत्तरी उनके जीवन की त्रासद गाथा सुनाती है। 'सेवासदन' का मदन सिंह कहता है— 'हमारे पूर्वजों ने खेती को सबसे उत्तम कहा है, लेकिन आजकल यूरोप की देखादेखी लोग मिल और मशीनों के पीछे पड़े हुए हैं।' वह भी कोई देश है जहाँ बाहर से खाने की वस्तुएँ न आएँ तो लोग भूखों मरें। जिन देशों में जीवन ऐसे उलटे नियमों पर चलाया जाता है, वह हमारे लिए आदर्श नहीं बन सकते। शिल्प और कला-कौशल का यह महल उसी समय तक है जब तक संसार में निर्बल, असमर्थ जातियाँ वर्तमान हैं। अफ़सोस कि आज़ादी के बाद तकनीकी विकास के नाम पर भी जंगल और खेत अधिक उजड़ रहे हैं। पहाड़ टूट रहे हैं या तोड़े जा रहे हैं जिसका सीधा असर परिवेश एवं पर्यावरण पर पड़ रहा है। खेतों की जीवनदायिनी मैदानी नदियाँ अपेक्षाकृत अधिक दूषित हो रही हैं। कई पुराने पोखर-नहर भी जलहीन हैं। गाँव का नगरीकरण हो रहा है। मॉल संस्कृति बढ़ रही है, सरकारी शिक्षण-संस्थान बंद हो रहे हैं। जो बचे भी हैं, वहाँ शिक्षण के नाम पर काग़ज़ी कारवाई अधिक हो रही है।

अपने क्षेत्र में काम न मिलने, कम मूल्य पर काम लेने और मालिकों की तिरस्कार की प्रवृत्ति से तंग मज़दूर दूसरे राज्यों की तरफ़ पलायन करते हैं अपने ही देश में बदहाल प्रवासी की-सी स्थिति भोगने को विवश होते हैं। अंग्रेज़ी सरकार और उसके कारिंदे ग़रीबों पर जो जुल्म ढाते थे, आज कमोबेश पुलिस व्यवस्था वैसी ही हो रही है। उनके भी हाथ बँधे हैं।

रंगभूमि का पूँजीपति जॉन और अंग्रेज़ अफ़सर क्लार्क भारतीय चेहरा लिए सामने हैं और उद्योग के नाम पर, मंदिर के नाम पर तो कभी विकास के अन्य आयामों के नाम पर ग़रीब जनता की ज़मीन साम-दाम-दंड-भेद अपनाकर ली जा रही है। लोग अपनी डीह से पलायन करने को विवश किए जाते रहे हैं। उनकी ज़मीन पर बड़े-बड़े होटल, रेस्तराँ व मॉल खुल रहे हैं। विकास के नाम पर जंगलों की अंधाधुंध कटाई और उपजाऊ ज़मीनें पूँजीवादियों की भेंट चढ़ाते जाना किसान-मजदूरों, छोटे-मोटे रोज़गार में लगे मेहनतकश गरीबों के दोहन का मार्ग है। डीह से उजड़ना पूरे परिवार को शून्य में लाकर खड़ा कर देता है और इसका सीधा असर बच्चों और युवाओं की शिक्षा पर पड़ता है। शोषण तंत्र के विरुद्ध प्रेमचंद की वाणी तल्ख़ हो जाती है—'जमींदारों से बचो तो धर्म के नाम पर दे दो , धर्म से बचो तो जमींदारी के नाम पर दे दो। देना तो मजबूरी है।' प्रेमचंद इस मजबूरी को ही जड़ समेत नष्ट कर डालना चाहते थे। 'कर्मभूमि' के शांतिकुमार के स्वर में प्रेमचंद के विचार उभरते हैं—''न्याय यह है कि शोषण के किसी भी तंत्र को उखाड़ फेंका जाय।'' मगर आज आज़ादी के अठत्तर वर्षों में भी क्या उसकी जड़ें और अधिक गहरी नहीं हुई है?

राष्ट्र और समाज से संबद्ध सरोकारों में किसानों, मजदूरों, के साथ ही स्त्री वर्ग की उन्नति के लिए प्रेमचंद के विचार जितने क्रांतिकारी रहे, उतने किसी के नहीं। निर्मला, ग़बन, सेवासदन, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान आदि उपन्यासों के साथ ही 'कुसुम', 'सुभागी', 'सुहाग का शव', 'बड़े घर की बेटी', 'बालक' आदि कहानियाँ स्त्री की सामाजिक स्थिति एवं समय के साथ आ रहे बदलाव की कथा रचती हैं।

उनकी स्त्री सामाजिक संबंधों और समस्याओं के केंद्र में है। समाज के भीतर झाँकें तो अनमेल विवाह से निराश-हताश ग़रीब 'निर्मला' आज भी मौजूद है जो मर-मरकर जीती हुए अंततः मर जाती है। 'गोदान' की रूपा पिता 'होरी' की गरीबी के अभिशाप को सहती हुई अनमेल विवाह को क़िस्मत मान लेती है। आज भी ऐसी बेमेल जोड़ियों की कमी नहीं जहाँ दुगुनी उम्र का अधेड़/विधुर गरीब किशोरी और नवयुवती को ब्याह कर लाता है। हज़ारों भारतीय शादियाँ प्रेम पर नहीं, अनकहे समझौते पर टिकी हैं। 'कुसुम' में लेखक स्वीकारते हैं— 'आज कई हजार वर्ष बीतने पर भी पुरुष के मनोभावों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पुरानी सभी प्रथाएँ कुछ विकृत, कुछ सुसंस्कृत रूप में मौजूद हैं। 'कर्मभूमि' की सुखदा तलाक़ की पक्षधर होकर भी तलाक़ नहीं लेती। वहीं, गोदान की मीनाक्षी तलाक़ लेती है। पिछले तीन-चार दशकों में तलाक़ के मामलों की संख्या बढ़ी है।

समाज की नैतिक व्यवस्था की चरमराहट पहले से अधिक बढ़ी है। अपराधों के नए रूप-रंग सामने आ रहे हैं। उच्च वर्ग के अतिरिक्त आज हर उम्र की स्त्री असुरक्षा के घातक भय से घिरी है। बालक भी सुरक्षित नहीं है। 'गोदान' की मीनाक्षी तो अन्याय और अपमान का बदला ले लेती है, 'सेवासदन' की सुमन नहीं ले पाती। उसका जीवन बिखर जाता है। आज ऐसी सुमन की संख्या भी कम नहीं है जो वेश्यावृत्ति में न भी फँसे किंतु काली गलियों की शिकार हो जाती हैंऔर अधिकांश शिकारी समाज के ओहदेवाले होते हैं। आज आधुनिक रूप में और कुछ रूप बदलकर वेश्यावृत्ति फल-फूल रही है। देह व्यापार में घसीटी जाने वाली स्त्रियों का ज़िम्मेदार कौन? इसका उत्तर 'सेवासदन' के कुँअर अनिरूद्ध से मिलता है, जब वे कहते हैं— ''हमें वेश्याओं को पतित समझने का अधिकार नहीं है। यह हमारी परम धृष्टता है। हम रात-दिन जो रिश्वतें लेते हैं, सूद खाते हैं, गरीबों का खून चूसते हैं, असहायों का गला काटते हैं, कदापि इस योग्य नहीं हैं कि समाज के किसी अंग को नीच या तुच्छ समझें। सबसे नीच हम हैं, सबसे पापी, दुराचारी, अन्यायी हम हैं जो अपने को शिक्षित, सभ्य, उदार, सच्चा समझते हैं।'' विडंबना यह कि अब तो महानगरों में पुरुष वेश्यावृत्ति भारतीय समाज को आईना दिखा रही है।

अंग्रेज़ हुकूमत के तहत जो नृशंसता आम जनों ने झेलीं, जिनकी ओर कथाकार ने अपनी कहानियों, उपन्यासों और लेखों के माध्यम से इशारा किया, आज भी उनसे मुक्ति कहाँ है! प्रेमचंद ने सेवासदन में बाल विवाह के दुष्परिणाम की ओर समाज का ध्यान खींचा। इसकी रोकथाम के लिए क़ानून भी बने किंतु परंपरा के नाम पर तो कभी विवशता का जामा पहने कई पिछड़े इलाक़ों में आज भी बाल विवाह हो रहे हैं और कहीं कोई विरोध नहीं होता।

धर्म के भीतर पाखंड का प्रवेश हो जाए तो धर्म धर्म नहीं रहता, कुरीतियों का कँटीला वृक्ष बन जाता है। 'रामलीला' एवं 'दूध का दाम' जैसी कहानियाँ इसी पाखंड और नैतिक पतन पर कुठाराघात करती है जो दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। 'दूध का दाम' का ज़मींदार महेशनाथ का नवजात शिशु भंगिन का दूध पीकर पलता है, तब उसे या परिवार को छूत नहीं लगती, मगर दूध पीना बंद होने पर पुरोहित शास्त्री जी प्रायश्चित स्वरूप अनुष्ठान करवाना चाहते हैं। महेशनाथ एवं शास्त्री जी के संवाद के अंश पाखंड की कलई खोलते हैं —

''तो इसका यह अर्थ है कि धर्म बदलता रहता है, कभी कुछ कभी कुछ?''

''और क्या! राजा का धर्म अलग, प्रजा का धर्म अलग, अमीर का धर्म अलग, ग़रीब का धर्म अलग, राजे-महाराजे जो चाहें, खाएँ, जिसके साथ चाहें खाएँ, जिसके साथ चाहें शादी-ब्याह करें, उनके लिए कोई बंधन नहीं। समर्थ पुरुष हैं। बंधन तो मध्यवालों के लिए है।''

छोटे शहरों, गाँवों में क्या आज भी स्थितियाँ यहीं नहीं? कहानी सवर्ण समाज के बहुरूपियेपन को आइना दिखाती है। 'दूध का दाम' में जिस भंगिन का दूध पीकर ज़मींदार-पुत्र पलता है, उसी भंगिन का बेटा मंगल अछूत समझा जाता है। यही सच है। गाँवों/क़स्बों/छोटे शहरों में जाति-प्रथा की आड़ में पल रही कुरीतियों से निम्न वर्ण/वर्ग को अब भी मुक्ति नहीं मिली है। आज भी अस्पृश्यता का शाप उन मजबूरों को निगल रहा है; सद्गति का 'दुखिया' आज भी बेमौत मर रहा है। 'ठाकुर का कुआँ' आज भी दलितों की पहुँच से बाहर है। कुआँ तो दूर की बात है। विद्यालय में रखी सुराही को छूने की मनाही है। सुराही से स्वयं पानी पी लेने पर शिक्षक की जानलेवा पिटाई की घटना इस सदी में भी घटी है। ख़बरें बताती हैं, इसी सदी के दूसरे-तीसरे दशक में इसी देश में दलित बालक के मंदिर प्रवेश करने पर पूरे मंदिर को धोया गया और उसके ग़रीब माँ-बाप पर पच्चीस हज़ार का जुर्माना लगाया गया।सवर्णों द्वारा गैंगरेप के बाद अस्पताल में दलित युवती की लाश परिजन को न सौंपकर पुलिस द्वारा आधी रात को तेल/पेट्रोल डालकर जलाई गई। जगज़ाहिर है कि पुलिस के हाथ बँधे हैं, वे ऊपरी दबाव में अमानवीय कृत्य करते हैं, जो भारतीय इतिहास में सुना न गया।दलितों के साथ ऐसी कई अमानवीय घटनाएँ पिछले कुछ वर्षों में घटित हुईं जो सदियों पूर्व की दासता का आभास देती हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है, ग़रीब दलित ही पिसते हैं। शिक्षित, किसी पद पर आसीन दलितों पर हाथ डालने की हिम्मत नहीं करते। धनी से कोई जाति नहीं पूछता, यह इस सदी के समाज का सच है।

'पंच परमेश्वर' की बूढ़ी खाला को तो कथाकार ने न्याय भी दिलवा दिया और अलगू-जुम्मन की दोस्ती की मिसाल भी क़ायम रखी। आज न्याय पाती खाला से अधिक संख्या भरपेट भोजन को तरसती 'बूढ़ी काकी' की है। काकी और खाला तो फिर भी जननी नहीं थीं, बड़े शहरों में कुकुरमुत्ते की तरह बढ़ आए वृद्धाश्रम में रहते और छोटे शहरों में उपेक्षित बेकार सामान की तरह घर में अकेलेपन की टीस झेलते बुजुर्ग माता-पिताओं में से अधिकांश की स्थिति कमोबेश यही है।

26 दिसंबर 1934 ई. को इंद्रनाथ मदान के नाम एक पत्र में प्रेमचंद ने लिखा है— 'कोई समाज-व्यवस्था नहीं पनप सकती, जब तक कि हम व्यक्ति उन्नत न हों।' स्पष्ट है कि प्रेमचंद प्रत्येक व्यक्ति के उन्नयन की जिस कामना के साथ विदेह हुए, वह मनोकामना आज भी धूल-धूसरित है। हम, इक्कीसवीं सदी के साक्षी बने बैठे हैं। इक्कीसवीं सदी विज्ञान एवं तकनीक के विकास से ब्रह्मांड जीत लेने जैसी बात करती है। विश्व बदलाव की नई-नई परिभाषाएँ गढ़ रहा, किंतु कुंठा का अस्तित्व अब भी क़ायम है। कहीं अंतरिक्ष यात्रा का इतिहास रचा जा रहा है, कहीं दीन दलित स्त्री की चिता उजाड़ी जा रही है और गाँव में घोड़ी चढ़ने पर दलित दूल्हे को पीटकर अधमरा किया ज़ा रहा है। मंगल और चाँद पर पित्ज़ा हट बनेंगे। ये सूने ग्रह पृथ्वी से ले जाए बीज से गर्भ धारण कर माता कहलाएँगे, मगर जिनकी सेवा से पृथ्वी की हरियाली बची है, वे दुर्दशा भोगते रहेंगे। उनकी दुर्दशा का अंत न होगा।

ज़मींदारी प्रथा का खुला विरोध करने वाले एकमात्र साहित्यकार प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' में लगानबंदी के खिलाफ़ आंदोलन के माध्यम से भले ही अपने समय में घटित बारदोली आंदोलन को चित्रित किया हो , 2021-22 में चलनेवाले किसान आंदोलन की जड़ में उन कारणों ने ही बदले रूप में पैठ बना रखी थी। विश्वगुरु कहलाता हमारा देश अपने ही समाज के लिए आदर्श उपस्थित न कर सका। आए दिन अमीर-ग़रीब का फ़ासला बढ़ता जा रहा है। पूँजीपति अरबों रुपए का कर्ज़ लेते हैं और माफ़ी पाते हैं जबकि निम्नमध्यवर्गीय/मध्यवर्गीय जनता क़र्ज़ के घेरे से मुक्ति के लिए आत्महत्या की राह चुनती है। पिछले कुछ वर्षों में भूख, बेरोजगारीके साथ ही छोटे व्यवसाय में कमर-तोड़ घाटे से हारकर आत्महत्या करने वालों की संख्या जितनी बढ़ी है, हैरान करने वाली है। मध्यवर्ग का छोटा हिस्सा उच्चवर्ग के क़रीब जा पहुँचा किंतु बड़ा हिस्सा नौकरी खोकर निम्नवर्ग की मानसिक यातना झेल रहा है।

बाहर के उजाले से भीतर का अँधेरा नहीं दिखता। गाँवों से पलायन करते 'गोदान' के गोबर की ही संख्या नहीं बढ़ी है, हीरा और शोभा के बीच का द्वेष भी गहराया है। खेत-खलिहान का झगड़ा, एक-दूसरे को दबाने-

सताने की प्रवृत्ति भी बढ़ गई है। रीति-रिवाज़ के नाम पर अंधविश्वासों में आज भी बहुत कमी नहीं आई है। स्टेटस के नाम पर फ़िज़ूलखर्ची सब कमोबेश मौजूद हैं। 'सेवासदन' का शर्मा कहता है— ''हाँ, नाच-तमाशे में अवश्य ही कम खर्च किया लेकिन इसकी कसर डिनर पार्टी में निकल गई, बल्कि अधिक। उनकी किफायत का क्या फल हुआ? जो धन गरीब बाजेवाले, फुलवारी बनानेवाले , आतिशबाजी वाले पाते , वह 'मुरे' कंपनी और 'फ्वाइट वे' कंपनी के हाथों पहुँच गया। मैं इसे किफायत नहीं कहता। यह अन्याय है।''

आज छोटी-छोटी अनाज और सब्ज़ी मंडियाँ उजड़ रही हैं। मॉल संस्कृति और फ़्लैट संस्कृति ने रेहड़ीवालों की, मुहल्ले के दुकानदारों की गुजर मुश्किल कर दी है। उनकी दुकानें भी कंपनियों के आइटम सजाने को विवश हैं। यह एक दिन में नहीं हुआ, मगर पिछले कुछ वर्षों में विकास के नाम पर जो ठीकरा निम्नवर्ग, निम्नमध्यवर्ग और मध्यवर्ग के सिर पर रह-रहकर फूटता रहा है, उसकी टीस के लिए कोई उपयुक्त शब्द नहीं मिलते।

अंग्रेज़ी का विरोध है, मगर अंग्रेज़ीदां व्यवहारों की बढ़त आम जन-जीवन में देखी जा सकती है जिसकी ओर कथाकार ने बार-बार इशारा करते हुए सचेत किया था। 'सेवासदन', 'कर्मभूमि', 'रंगभूमि', 'गोदान', 'सद्गति', 'दूध का दाम' आदि रचनाएँ दलितों के प्रति पूँजीपति सवर्णों और धर्माडंबर फैलाते पुजारियों की ही नहीं, गद्दी पर बैठे शासक एवं पूँजीपति की साँठ-गाँठ की भी कलई खोलती हैं। 'रंगभूमि' का सूरदास अन्याय का विरोध करने पर आज जेल की सलाख़ों के पीछे पहुँचा दिया जाता है या रातोंरात गायब कर दिया जाता है फिर वर्षों ख़बर नहीं मिलती। ऐसे अन्य कई ज्वलंत सरोकार प्रेमचंद की कलम से निकलकर समाज को आगाह करते रहे।समय की बदक़िस्मती है कि वे सरोकार आज भी उतने ही ज्वलंत हैं।

प्रेमचंद ने भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू पर पैनी दृष्टि रखी और उस पर कलम चलाई। मुक्तिबोध के अनुसार— **प्रेमचंद आत्मा के शिल्पी हैं।** इसमें प्रेमचंद की प्रासंगिकता का मर्म छिपा है। प्रेमचंद व्यक्ति, समाज और देश सभी को संस्कारित कर उसकी आत्मा का विकास करना चाहते हैं, क्योंकि श्रेष्ठ जीवन के लिए इनकी आत्मिक उन्नति परमावश्यक है। यह कार्य व्यक्ति-व्यक्ति की उन्नति से ही संभव है।

डॉ. कमल किशोर गोयनका मानते हैं— ''प्रेमचंद साहित्य अपने युग का प्रतिबिंब है। वे युग के साथ चले हैं और अपने युग का, अपने समाज का कायाकल्प भी किया है। वे समाज की धर्म, अर्थ, राजनीति, रूढ़ि, अंधविश्वास आदि सभी प्रकार की परतंत्रताओं से मुक्ति के लेखक हैं। वे स्वाधीनता और साम्राज्य के महागाथाकार हैं और इसमें उनकी महाकाव्यीय चेतना के दर्शन होते हैं। दासता और पराधीनता से देश को मुक्त करने के प्रति कटिबद्ध हैं। देश, समाज, संस्कृति तथा व्यक्ति तक की उन्हें चिंता है। उनका राष्ट्रभाव, संस्कृति भाव, शोषण-दमन से मुक्ति भाव, विषमता, भेदभाव से मुक्तिभाव , सम्प्रदायों में एकता भाव तथा कृषि -संस्कृति की रक्षा का भाव तथा भारतीयता की रक्षा का भाव आदि उन्हें अपने समय का तो महान कथाकार बनाता ही है, किंतु उन्हें काल की दीवार को तोड़कर आने वाले समय के लिए भी प्रासंगिक बनाता है।''

सार रूप में कहा जा सकता है, प्रेमचंद ऐसे युगांतरकारी रचनाकार हैं जिन्होंने जीवन के सरोकारों को विविध कोणों से देखने-समझने, समाज को समझाने के साथ ही आगाह करने के कार्य किए। समाज की आत्मा को उसकी ही विशिष्टता का बोध कराकर उन्नत करने के उनके प्रयास के समतावादी स्वर आज भी हमें तमाम प्रवंचनाओं, विडंबनाओं के प्रति चेता रहे हैं। ❐

email : dr.artismit@gmail.com

बच्चों का सवाल

❐ जसवीर त्यागी

सुबह की सैर से घर की ओर लौटते हुए
राह में पाँच-छह साल के तीन बच्चे मिले

तीनों के साथ चार श्वान शिशु
सब बाल-क्रीड़ाओं में मग्न

मुझे नज़दीक आता देख
एक बच्चे ने कहा-
अंकल क्या आपने
इन पिल्लों की मम्मी को कहीं देखा है?

बच्चों का सवाल
गीली मुल्तानी मिट्टी-सा नरम था
मैंने कहा-बेटा मैंने तो देखा नहीं

अपनी निक्कर को
ऊपर की तरफ चढ़ाते हुए
दूसरा बच्चा बोला-

देखिये अंकल
इन पिल्लों की मम्मी
इन्हें अकेला छोड़कर कहीं चली गयी है

ये इतने छोटे बच्चे
अपनी मम्मी के बिना कैसे रहेंगे?
इन्हें मम्मी की याद आती होगी!

बच्चों का सवाल
बच्चों की तरह सरल न था
वह हमारे समय का
एक बड़ा चुनौती भरा सवाल था

जो लोग बच्चों को
सिर्फ़ बच्चा समझते हैं

ऐसे लोग जीवन को
कितना कम समझते हैं। ❐

Email : dr.jasvirtyagi@gmail.com
Mob. 9818389571

व्यंग्य-रचना

'व्हाटसएप' और 'फेसबुक' की जय

□ डॉ. संजय कुमार

व्हाट्सएप के बिना हमारी जिंदगी अधूरी है और फेसबुक के बिना अदृश्य। यह अधूरापन और अदृश्यता भला किसे पसंद होगी ? लिहाजा हर मोबाइलधारी के मोबाइल में ये दोनों ऐप के रूप में विराजमान हैं। वहां दोनों को एक खास जगह मिली हुई है। वैसे दुनिया में ऐप तो अनेक हैं, परंतु यह दोनों हमारे खासमखास हैं। सचमुच यह दोनों हर स्मार्टफोन की शान भी हैं और सभी ऐपों में महान भी। इन दोनों को चलाते समय मोबाईल हैंग होने की गुस्ताखी न हो जाय, इसीलिए नए और मंहगे मोबाईल फोन धड़ल्ले से खरीदे जा रहे हैं और पुराने कौड़ियों के भाव बिक रहे हैं।

सुबह-सुबह व्हाट्सएप पर गुड मॉर्निंग, सुप्रभात, शुभदिन आदि मैसेज का आना मुर्गे के बांग जैसा है। वही हमें उठाता है और सुबह होने का अहसास कराता है। दिन की शुरूआत ऐसे मैसेज पढ़ने के साथ न हो, तो ऐसा लगता है कि आज दिन अच्छा नहीं बीतने वाला। सूर्य की प्रखरता में कमी आ जाती है और वह हमें फीका-फीका लगने लगता है। उस दिन यदि हमारे दो-चार काम बन भी जाएं, तो जो काम नहीं हुआ उसकी वजह इन्हीं मैसेजों का किसी कारण से न आना या हमारे द्वारा न पढ़ा जाना होता है। यानि व्हाट्सएप की सुबह पहले मैसेज के बिना दिन के अच्छा नहीं गुजरता अकल्पनीय है।

परंतु हमारी जिंदगी में व्हाट्सएप की यह धमक केवल सुबह तक सीमित हो, ऐसा भी नहीं है। दिन में तमाम मैसेज भेजने, पढ़ने और फॉरवर्ड करने के बिना जिंदगी का कोई खास लुत्फ नहीं आता, जबकि जिस दिन हमारे व्हाट्सएप पर कोई अच्छा सा फोटो या वीडियो आता है, वह दिन हमारी जिंदगी का खास दिन होता है। जब यह मैसेज हम कई लोगों को फॉरवर्ड करते हैं तो यह फीलिंग आना स्वाभाविक है, कि हम उनका भी आज का दिन खास बना रहे हैं। ऐसे फोटो और वीडियो को डाउनलोड करने में जो आनंद मिलता है वह किसी और काम में भला कैसे मिल सकता है ?

व्हाट्सएप की इसी महत्ता के कारण इसके हजारों-लाखों ग्रुप भी बने हुए हैं। लोग खुशी-खुशी इस ग्रुप में शामिल होते हैं, जैसे कि सत्संग में शामिल हो रहे हों। फिर तो ग्रुप में सबसे ज्यादा फोटो, वीडियो और मैसेज भेजने की आपा-धापी में किस ग्रुप में क्या भेजना चाहिए इस मर्यादा के बंधन भी ढीले पड़ जाना स्वाभाविक ही है। सबसे पहले मैसेज देखने वाला प्रथम पुरस्कार नहीं पाता, पर प्रथम होने का सबसे सुखद एहसास जरूर पाता है। सबसे बाद में देखने वाला या न देखने वाला ग्रुप का बोझ समझा जाता है। यह बोझ तब उतरता है जब वह खुद ग्रुप से बाहर हो जाता है।

व्हाट्सएप की डीपी में पिक डालना और स्टेटस लगाना हमारे सबसे आवश्यक कामों में से हैं। हम सौ काम छोड़ कर पिक डालते हैं और हजार काम छोड़ कर स्टेटस लगाते हैं। डीपी पर हमारा पिक हमारी पहचान है और स्टेटस हमारा सम्मान। इसे बदलते रहने की जरूरत भी हम खूब समझते हैं और पूरी जिम्मेदारी के साथ निभाते हैं। डीपी, स्टेटस तथा मैसेज में ज्ञान की सरिता बहती रहती हैं। किताबें हम चाहे जितनी पढ़ लें, पर इन्हें नहीं पढ़ेंगे तो सच्चे ज्ञान की प्राप्ति होना असंभव है।

हमारी जिंदगी का प्रथमार्ध यदि व्हाट्सएप है तो उतरार्ध फेसबुक। फेसबुक प्रोफाइल बनाना हर आदमी के लिए ठीक वैसे ही जरूरी है, जैसे हर नागरिक का आधार कार्ड बनाना। इसके बाद फ्रेंड रिक्वेस्ट भेजना, फ्रेंडशिप एक्सेप्ट करना, फोटो शेयर करना आदि हमारे दैनिक जीवन का वह महत्वपूर्ण हिस्सा है, जिसे हम भूल से भी नहीं भूलते। हम मुस्कुरा कर किसी को फ्रेंड रिक्वेस्ट भेजते हैं और हँस कर एक्सेप्ट करते हैं। इस रिक्वेस्ट और एक्सेप्ट के बीच के पल हमारी जिंदगी के खूबसूरत पल होते हैं।

फेसबुक पर लाइक, कमेंट और शेयर की भी अपनी महत्ता है। हमारे फोटो, विचार या मैसेज पर किसने लाइक और कमेंट भेजे यह जानना हमारे लिए महत्वपूर्ण है तथा लाइक और कमेंट की संख्या गिनना उससे भी अधिक महत्वपूर्ण। कम संख्या देख कर हम हताश - निराश हो जाते हैं और बड़ी संख्या देख कर गर्व और खुशी से झूम उठते हैं। या कहें कि हम उतने ही खुश होते हैं, जितना फेसबुक के लाइक, शेयर और कमेंट हमें खुश होने देते हैं।

हमारी जिंदगी में व्हाट्सएप और फेसबुक की इस आधी-आधी हिस्सेदारी में सिग्नल, मैसेंजर, ट्विटर, टेलीग्राम, इंस्टाग्राम, आदि ने भी थोड़ी हिस्सेदारी हड़पने की कोशिश की है और कुछ हद तक सफल भी रहे हैं। जिंदगी के लमहों में से चंद महत्वपूर्ण लमहे उन्होंने भी चुराए हैं। व्हाट्सएप और फेसबुक से नजर बचा कर हम दो-चार ट्रीट भी कर देते हैं और इंस्टाग्राम पर कुछ तस्वीरें भी डाल देते हैं। परंतु कुल मिला कर हर सुबह हमारी आंख व्हाट्सएप मैसेज पढ़ने के साथ खुलती है और रात फेसबुक पर चैटिंग करते कटती है। इसी बीच न जाने कब आँख लग जाती है और हम अगली सुबह व्हाट्सऐप के गुडमार्निंग मैसेज द्वारा जगाए जाने तक सो जाते हैं। ये दोनों हमारे सबसे विश्वस्त सहचर हैं और हमेशा हमारे साथ रहते हैं। हम भी इनका साथ कभी नहीं छोड़ते। □

असि. प्रो. मनोविज्ञान विभाग,
ए.एन. कॉलेज, पटना

गर्मियों में गाँव जाने का रोमांच

▫ बुद्धिनाथ मिश्र

यह उन दिनों की गर्मियों की कहानी है, जब कच्ची सड़क पर बैलगाड़ी दौड़ाते हुए हीरामन गाता था—''न हाथी है, न घोड़ा है, वहाँ पैदल ही जाना है।'' सचमुच, गाँव से टीसन और टीसन से गाँव पैदल चलकर ही पहुँचा जाता था। कच्ची सड़क भी गाड़ीवानों और टमटम वालों को ही मयस्सर थी। बाकी आबाल-वृद्ध लोगों के लिए वहाँ पगडंडियाँ थीं, जिसे 'लोकपैरिया' कहते हैं। लोकपैरिया यानी पदयात्रियों के असंख्य पैरों के निशान से बनी, वीथिका, जिस पर गाँव के लोग नंगे पाँव ही चलते थे! दोपहर में तपती धरती से पाँवों को बचाने के लिए स्कूली बच्चे केले के तने को काटकर चप्पल की तरह बाँध लेते थे। आह! क्या ठंढक मिलती थी उससे दोनों तलवों को! जब आगे की पढ़ाई के लिए शहरों कस्बों में चले गए, तो गाँव की तपन ऐसी याद आने लगी कि गर्मियों की छुट्टियाँ होते ही मन और मन से आगे पाँव अपने घर जाने को बेताब हो जाते थे।

वैसे तो छुट्टियाँ शरद ऋतु में भी दुर्गा पूजा-दीपावली के अवसर पर होती थीं, मगर वे छिट-पुट वर्षा जैसी होती थीं, जिनमें गाँव जाना, न जाना बराबर था। केवल, गर्मियों की छुट्टियाँ थोक में होती थीं। इसलिए घर लौटने की उत्कंठा गर्मियों में अधिक होती थी। सारी वार्षिक परीक्षाएँ अप्रैल तक हो जाती थीं। उसके बाद, सभी विद्यार्थी शहर के पिंजरों से निकल कर घर की ओर भागते थे। पैसेंजर ट्रेन हर टीसन पर बोलती-बतियाती चलती थी। इंजन से निकलनेवाला कोयले का धुआँ अच्छे भले कपड़े का हुलिया बिगाड़ देता था। घर पहुँच कर पहला काम साबुन लगाकर नहाना और कपड़ा धोना होता था।

गाँव के सभी घर मिट्टी के होते थे, जिसमें धरती पर दरी बिछाकर सोते समय माँ की गोद में सोने का आनंद आता था। आत्मा को शीतल कर देनेवाली ठंढक। दरवाजे पर खड़े पीपल या नीम गाछ के पत्तों से छनकर आती झिरझिर हवा पूरे शरीर को शिथिल कर देती थी। 'गोजै'—गेहूँ और जौ के औटे की लोई को माँ अपने हाथों से थपकाकर गोल आकार देती थी, जिसे मिट्टी के मोटे तबे पर सेंकते समय आनेवाली खुशबू कई दिनों के उपासे परदेसी युवक की भूख इतना बढ़ा देती थी कि बिना तरकारी के, केवल नमक-तेल या हाथ में अँचार लेकर हम टूट पड़ते थे।

नदी, पोखर या कुओं के जल पीने से लेकर नहाने और खेत पटाने तक का काम करते थे। दाल को पकाने के लिए पोखरे का जल ही उपयोगी माना जाता था। कपड़े धोना हो या मवेशी को पानी पिलाना या नहलाना हो, नदी-पोखरे ही सहायक थे। कुएँ का पानी पनिहारिने मिट्टी के घड़े में भरकर घर-घर पहुँचाती थीं सावन भादो में जो जलस्तर उच्चतम स्तर पर होता था, वह बैसाख के बाद धीरे-धीरे पाताल लोक की ओर जाने लगता था। इसलिए, कुएँ से पानी निकालने के लिए दोल-बाल्टी की रस्सी बड़ी करनी पड़ती थी।

कुएँ के चारों ओर कीचड़ में पनप आए पुदीने की बहार आ जाती थी उन दिनों, जिसका उपयोग आम का पना बनाने में खूब होता था। पना यानी हरे आम को पकाकर उसके गूदे में काला नमक और भुने हुए जीरे की बुकनी डालकर तैयार किया गया घोल। कुएँ के जल के साथ-साथ पुदीना भी सब जाना (सार्वजनिक) था। पना-सत्तू का घोल गर्मियों में सुबह-सुबह खरमेटाव का काम करता था और लू से भी लड़ता था। सबेरे का नाश्ता खरमेटाव (खर=अम्ल, मेटाव मिटानेवाला) इसलिए कि उससे भरे पेट में एसिडिटी नहीं हो पाती थी।

खेतों में रबी की फसलें कटकर खलिहानों में आ जाती थीं, जिनसे अन्न के दाने दौनी-ओसौनी कर निकाले जाते थे। दौनी में लगे बैलों के मुँह में 'जाबी' पहना दी जाती थी, जिससे वे मुँह चलाकर अनाज खा न सकें। फिर भी वे मुँह मार ही लेते थे, जो अगले दिन गोबर से निकलते थे और जिसे गरीब लोग पानी में धोकर खाने के लिए निकालते थे।

खलिहान से अनाज कुठलों में रखने के लिए जब घर आता था, तब पहला अंश ('अगों' या विष्णुअंश) कुल-पुरोहित के लिए निकाल दिया जाता था। उसके बाद नाऊ, कुम्हार, बढ़ई आदि को यथाभाग वितरित होता था। विनिमय के उस दौर में सब्जी से लेकर संतरे तक, तरबूज से लेकर ताइकुल तक (ताड़ का फल) अनाज देकर ही लिये जाते थे।

प्रचंड धूप से बचने के लिए खलिहान प्राय: बाग-बगीचे में ही लगाए जाते थे। आम के बगीचे में तब तक अमिया (टिकोरे) पेड़ों से गिरने लगती थी, जिससे पना और चटनी बनती थी। दिन में दौनी-ओसौनी होती थी; रात में गिरहथ को खलिहान में ही सोना पड़ता था। आमगाछी में महुआ, लीची, बड़हल और जामुन के पेड़ भी कुछ-न-कुछ देने के मूड में हो जाते थे। सबका अपना क्षेत्रफल था, अपना जादू था। इन सबसे अलग करौंदे की झाड़ियाँ थीं, जिनका खट्टा फल चटनी-अंचार के काम आता था। आम की गुठली जब थोड़ी सख्त होती थी, तब घर-घर में अँचार बनाने का उपक्रम शुरू हो जाता था। आँधी-अंधड़ आने पर पेड़ों से आम ज्यादा गिरते थे। तब अचार-कसौनी बनाने की गति तीव्र हो जाती थीं।

पहले कलमी आम बहुत कम होते थे। अधिकतर बीजू होते थे, जो आकार में छोटे, लेकिन रस से भरे होते थे। किशोर हो या वृद्ध, सब एक-एक बाल्टी आम पानी में भिंगोकर दिन भर में चूस ही लेते थे। आकर्षक तो लीची और जामुन भी थे, मगर उनका क्रम बाद में आता था। शाम तक गाछी में बटोरे गए सारे आम आँगन पहुँचा दिए जाते थे। खपत से अधिक हो जाने पर आँगन में खटिया बिछाकर अमावट पार दी जाती थी।

आदमी की तरह ही प्रत्येक पेड़ का नाम उसकी विशेषता के आधार पर रखा जाता था; जैसे, सबसे पहले रोहिणी नक्षत्र में पकनेवाला आम 'रोहिनिया', कोने पर खड़ा पेड़ 'कोनैला' और सिंदूरी रंग वाला आम 'सिनुरिया' कहलाता था। डाल से गिरा आम यदि किसी बटोही के आगे गिरता था तो उसे हथियाने का पूरा हक़ उस बटोही को मिलता था। रास्ते के किनारे बरगद पाकड़ के छायादार पेड़ों के नीचे, समर्थ किसानों द्वारा प्यासे बाट-बटोहियों के लिए पनिशाला चलायी जाती थी, जहाँ घड़े के ठंढे पानी के साथ गुड़ और भींगा चना भी बाँटा जाता था। पदयात्रा का सार्वभौमिक नियम यही था कि जिस गाँव में सूर्यास्त हो जाए, उसी गाँव में किसी दरवाजे पर रात्रि विश्राम कर लीजिए। यथासाध्य आवास-भोजन की व्यवस्था गृहस्वामी करेगा।

ग्रीष्म ऋतु की सुहानी साँझ की तारीफ महाकवि कालिदास ने भी 'शाकुंतलम्' में की है, क्योंकि नाटक खेलने के लिए यही उपयुक्त समय है। वैसे भी, हर मंदिर के परिसर में भजन-कीर्तन और मानस के पाठ से गाँव के टोले गुलजार रहते थे।

मौसम का सबसे बड़ा पर्व 'आर्दा' होता था। आर्द्रा नक्षत्र यानी पावस ऋतु का प्रवेश द्वार, जब गाँव के देवालयों में खीर-पूड़ी-आम का दिव्य भोज होता था। कुछ दिनों तक तीतरपाखी मेघों की प्रतीक्षा होती थी। यदि बादल नहीं छाए तो इंद्रदेव को प्रसन्न करने के लिए भगत लोग पूजा-टोटका करते थे। बरसात आते ही पोखरे के कमल मुरझाने लगते थे और इसके साथ ही उन सभी प्रवासियों के मुँह मलिन हो जाते थे, जिनकी गर्मियों की छुट्टियाँ ख़त्म होनेवाली थीं। फिर वही पैसेंजर ट्रेन की उबाऊ यात्रा, वही पराये शहरों के कबूतरखाने और वही दिहाड़ी वाली जिंदगी की आपाधापी। गाँवों में रह जाती थीं अपने-अपने राम की माता कौशल्या जो जाँत पीसती हुई गाती रहती थीं-'कौन बिरिछ तर भींजत होइ हैं,/राम-लखन दुहुँ भाई।' ❐

buddhinathji@gmail.com
Mob. 7060004706

टूटा तारा ◻ डॉ. ऋतु शर्मा

रात आँगन से
बिटटू ने देखें ,
टूटे तारे
जा झटपट
माँ से बोला
माँ , अब आएँगे
फिर से, पापा हमारे ,
बहुत सारी ख़ुशियाँ और
ढेरों खिलौने लाएँगे
उठा लेंगे फिर
बाँहों में मुझे
बन घोड़ा सारा दिन
पीठ पर अपनी
मुझे घुमाएँगे,
खेलेंगे हम साथ-साथ
आँख मिचौली
पापा अब मेरी
नज़रों से ओझल
न हो पाएँगे
सुन बिटटू की
प्यारी बातें
माँ की आंखों के
आँसु कैसे रुक पाते
हृदय की पीड़ा
को छुपा
माँ ने पूछा बिटटू,
तुमको है ये सब
कैसे पता ?
बिटटू बोला
अभी आसमान से
टूटे बहुत से तारे हैं
हो न हो इन्हीं मे से
कोई एक पापा हमारे हैं .
अपने प्यारे बिटटू को
माँ करना चाहती
थी न उदास
सुन बिटटू की बात
बिठा गोद में
अपने पास
माँ ने बँधाई फिर से नई आस ,
जब टूटेगा आसमान से
सबसे बड़ा तारा
तभी होगा
पूरा सपना तुम्हारा
आस की घूट पी
बिटटू तो सो गया
पर माँ को था पता
पापा के नाम का तारा
तो कभी का खो गया
कभी का खो गया। ❐

नीदरलैण्ड

कहानी

तूफ़ान का गुजर जाना अच्छा होता है

□ सुषमा मुनीन्द्र

''जब तक धक्का नहीं लगता व्यक्ति सम्भल कर चलने की आदत नहीं डालता --- सच यह भी है बर्फ को पिघलाने के लिये निश्चित तापमान देना पड़ता है --- और यह कि तूफ़ान का गुजर जाना अच्छा होता है। तूफ़ान की उमड़-घुमड़ बेचैनी और डर पैदा करती है जबकि तूफ़ान का सामना करने की हिम्मत कर लें और उसे गुजर जाने दे तो शांति का आलम हम महसूस कर सकते हैं --- यशस्वीजी आप मेरी बात समझ रहे हैं न? तानीजी को चरम की स्थिति में ले जाना होगा। यदि आप कोई फैसला सचमुच चाहते हैं तो .....

मनोरोग चिकित्सक के सिर में बाल बहुत कम बचे हैं। पीछे और कानों के पास फिर भी हैं किंतु मध्य भाग ललाट की तरह चिकना और चमकदार हो चुका है। केश पतन की पूर्ति के लिये इन्होंने बाँयीं कनपटी के बालों को इतना बढ़ा रखा है कि मोड़ कर चमकदार हिस्से में तरतीब से बिछाते हुये दाँयीं कनपटी तक इस तरह ले आते हैं कि खल्वाट स्थान कुछ उपजाऊ दिखाई देता है। केश यथा स्थान हैं अथवा नहीं यह जाँचने के लिये ये जब-तब हथेली फेर लेते हैं और आश्वस्त होते हैं। यशस्वी से बात करते हुये चिकित्सक ने बालों पर हथेली फेरी फिर आगे बोले -

''मनोरोग, ठीक करने के लिये लम्बा समय चाहिये। मनोरोगी अपनी खामोशी धीरे-धीरे तोड़ते हैं। तानी तो खुद को मनोरोगी मानतीं ही नहीं। उनका कहना है वे इसलिये मेरे पास आईं कि आप ऐसा चाहते थे। इसलिये जो भी कोशिश करनी है आपको करनी है। आप सचमुच फैसला चाहते हैं तो .....

केश पर हाथ फेरते चिकित्सक को देख यशस्वी को लगा ये जरूर तृतीय श्रेणी विद्यार्थी रहे होंगे। तृतीय श्रेणी विद्यार्थी अच्छा शिक्षक होता है। विषय को कई तरह से समझाता है। जानता है कई बार समझाने से औसत और निम्न औसत विद्यार्थी भी समझ लेते हैं।

''हम एक-दूसरे की बातें गुप्त रखते हैं लेकिन जरूरी बातों का खुलासा जरूर करते हैं। तानी को आपसे कोई शिकायत नहीं है। मन से आपको स्वीकार नहीं कर पा रही हैं। किसी होमियोपैथ डॉक्टर बलभद्र गोस्वामी का नाम ले रही थीं। उससे शादी करना चाहती थीं। नहीं कर पाईं। इस हताशा में मायके तभी जाती हैं जब माता-पिता बार-बार बुलाते हैं।''

''हाँ, यह है।''

''आपसे उतना ही व्यवहार रखती हैं जो जरूरी होता है।''

''हाँ, यह है।''

''खुद को अपराधी भी मानती हैं। कहती हैं आप उन्हें नार्मल व्यवहार करने के लिये बार-बार प्रेरित करते हैं। वे नार्मल हो जाना चाहती हैं पर नहीं हो पा रही है।''

''पूछता हूँ तो कुछ बताती नहीं। अपनी जिम्मेदारी वह समझती है लेकिन मैंने कभी नहीं देखा जब वह बिट्टू को पूरी तरह ममता में डूब कर प्यार कर रही हो।''

''तभी कहता हूँ कोशिश आपको करनी है। आपने कोशिश में कई साल लगा दिये अब तानी से स्पष्ट बात करें। कहें यदि वे आपके साथ नहीं रहना चाहतीं तो जहाँ चाहती हैं चली जायें। वैसे उनकी बातों से लगता है वे आपको नहीं छोड़ना चाहतीं। स्पष्ट स्थिति एक बार तकलीफ देगी, अस्पष्ट स्थिति रोज की हताशा होती है। बरसों के बंद दरीचे छोटे वार से नहीं खुलते। एक वार हो पर ऐसा हो कि दरीचे खुल जायें।''

''ठीक कहते हैं।''

चिकित्सक के खुलासे यशस्वी को चौंका रहे थे तो मायके न जाकर तानी अपना विद्रोह प्रदर्शित करती है। उसे सफेद शर्ट में देखना चाहती है क्योंकि बलभद्र गोस्वामी अक्सर पूरी बाँह की सूती सफेद शर्ट पहनता है। बिट्टू को होमियोपैथी उपचार दिलाती है क्योंकि बलभद्र इस उपचार को सुरक्षित मानता है। ओह --- यहाँ तानी नहीं उसकी छाया रह रही है। एक तूफ़ान रचना होगा। टूट-फूट होगी लेकिन जड़ता भी खत्म होगी। तूफ़ान के बाद की शांति भी होगी। घर में वही जड़ता भर गई है जो पिरामिड और मीनारों में होती है। मीनार कितनी ही अद्भुत हो उसमें लोग नहीं रहते। पिरामिड भले ही दुनिया का एक आश्चर्य हो वहाँ जीवन नहीं होता।

घर को तूफ़ान से गुजरना होगा।

इन वर्षों में तानी ने यशस्वी को वह सब दिया है जो पत्नी देती है। दो साल की पुत्री बिट्टू, अच्छा भोजन, व्यवस्थित घर। किंतु सम्पूर्ण गृहस्थी, सफल दाम्पत्य की प्रतिश्रुति नहीं मानी जा सकती। आपसी स्नेह, सम्मान, सकारात्मक भाव न हो तो उपक्रम निष्क्रिय हो जाते हैं। अच्छे वस्त्राभूषणों में तानी की भरी देह खूब सजती है लेकिन चेहरा जैसे कलात्मक मूर्ति का पाषाण मुख। मूर्ति में फिर भी शिल्पी भाव भर देते हैं पर तानी के चेहरे में कोई भाव नहीं दिखता। इतनी चुप रहती है कि घबराहट होती है। घबरा कर ही यशस्वी ने तानी का उपचार कराने पर विचार किया। उपचार को छः माह हो रहे हैं। यशस्वी को आशंका थी तानी साइकियाट्रिस्ट के पास चलने को तैयार नहीं होगी लेकिन वह बिना विरोध किये चल दी थी। प्रतिक्रियाविहीन दाम्पत्य। जहाँ कुछ नये-तुले संवाद हैं, चेष्टायें हैं, आवश्यकतायें हैं। बस।

घर को तूफ़ान से गुजरना होगा।

रात के नौ बजे हैं।

बिट्टू सो चुकी है।

यशस्वी को जल्दी नींद नहीं आती। न ही तानी को। टी.वी. पर चैनल बदलते हुये एक घण्टा बिताया फिर दोनों हमेशा की तरह किताब पढ़ने लगे। पढ़ते-पढ़ते दोनों कब सो जाते हैं दोनों को पता नहीं होता। यशस्वी ठीक-ठीक नहीं बता सकता तानी कब सोती और कब नहीं सोती है। कई बार उसे नींद नहीं आती जबकि तानी गहरी नींद में रहती है। कई बार जब उसकी नींद खुलती है, तानी स्टोर में चूहे मार रही होती है। अब तक कई चूहे-चुहिया मार चुकी है। यशस्वी नहीं जानता तानी को नींद नहीं आती इसलिये चूहे मारती है या चीजों की हिफाजत करने के लिये? तानी की बहुत सी बातें हैं जो यशस्वी को मालूम न होते हुये भी मालूम हैं और मालूम होते हुये भी मालूम नहीं हैं। यशस्वी ने संवाद बनाया -

''इलाज से कुछ फायदा है?''

''बीमारी क्या है? आपने जिद पकड़ ली। मुझे डॉक्टूर के इतने चक्कर लगाने पड़े।''

''कभी-कभी हम नहीं जान पाते हैं कोई बीमारी है, जो कि होती है। तानी तुम ठीक होती तो मैं तुम्हें साइकियाट्रिस्ट के पास क्यों ले जाता? बात यह है ---- तुम्हारी कुछ बातें मैं दुनियावी अनुभवों से जान गया हूँ, कुछ डॉक्टर ने बताई। तुम बलभद्र गोस्वामी के पास लौट जाओ।''

तानी ने अकस्मात यशस्वी को देखा। यशस्वी का चेहरा जर्द लगा। मानव मनोविज्ञान जटिल होता है। तानी चाहती रही है उसके ठण्डेपन, निस्संगता, निर्लिप्तता को देख कर यशस्वी कह दे - तानी मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता। जाओ, जहाँ जाना चहती हो। सुनते ही वह अपने शहर के पन्नीलाल चौराहे में स्थित गोस्वामी होमियो हाल में बैठे बलभद्र के समक्ष विजयी भाव लिये जा पहुँचे। पर यशस्वी उसके व्यवहार को अनदेखा करते हुये मजे से समय बिता रहा है। उसे भी जिंदगी का आनंद उठाने के लिये प्रेरित करता है -

''तानी परेशान हो। तबियत ठीक नहीं? माँ की याद आ रही है? क्या हमारी बिट्टू रानी ने थका डाला? खुश रहा करो। तुम खुश नहीं रहती हो तो ऑफिस में मेरा मन नहीं लगता है। मुझसे तो कोई गलती नहीं हो गई? हो तो बता देना।''

ऐसे मौके पर तानी ने कहने की पूरी कोशिश की - मेरा व्यवहार-आचरण देख कर आप जान चुके हैं मैं आपके साथ नहीं रहना चाहती। कोशिश की लेकिन पूरा जोर लगा कर नहीं कह पाई। आज वांछित स्थिति बन गई है। कहने का पूरा मौका है लेकिन वह इतनी निढाल हो रही है कि स्थिति का सामना करने की मानसिकता नहीं बना पा रही है। इस तरह स्तब्ध भाव से यशस्वी को देख रही है जैसे यहाँ एक खाली स्थान था और ठीक अभी, अचानक, एक चेहरा उदित हुआ है जो यशस्वी अर्थात् उसके पति का है।

''तानी मैंने कोई अनोखी बात नहीं की है। यह तुम्हारे लिये ठीक होगा। मेरे लिये भी। तुम कब तक अपनी भावनाओं को मारती रहोगी? मैं कब तक तुम्हारे सामान्य होने की प्रतीक्षा करूँगा? जीने के लिये कुछ एहसास जरूरी होते हैं। मैं चाहता हूँ, कोई हो, जो मन से मेरा हो। मेरे सुख-दुःख को समझे। संबंध इस तरह --- दरअसल हर इंसान को अपनी तरह से जीने का हक है। हम खुद को एक-दूसरे पर थोपकर अपने और एक-दूसरे के प्रति अन्याय कर रहे हैं।''

यशस्वी भीतर से असहज हो रहा था। लग नहीं रहा था सहजता से अपनी बात तानी के सामने रख सकेगा।

''मुझे आपसे शिकायत नहीं है। डॉक्टर ने कहा था मेरी बातें आपको नहीं बतायेंगे। बताईं। मुझे बुरा लग रहा है।''

''डॉक्टर का मानना है अब अंतिम विकल्प यही बचता है कि मैं सीधे तुमसे बात करूँ। डॉक्टर के लिये तुम गलत मत सोचना। उन्होने बताया तुम्हें मुझसे कोई शिकायत नहीं है लेकिन एक इस बात के आधार पर साथ नहीं रहा जा सकता तानी।''

यशस्वी पास में सोई बिट्टू के छितराये केशों को तर्जनी से सहेज रहा था। मानो प्रदर्शित करना चाहता हो उसके लिये एक यह सहारा बहुत है।

''मैंने डॉक्टर को क्या और कितना बताया मुझे मालूम नहीं है। वे गोपनीयता भंग कर आपको परेशान करेंगे यह भी मुझे मालूम नहीं था। मैं आपको कष्ट नहीं देना चाहती।''

''जानता हूँ मेरी मान रक्षा के लिये इतना दिखावा कर लेती हो कि ऊपरी तौर पर यह एक सामान्य घर-परिवार जान पड़े।''

तानी को कुछ नहीं सूझ रहा था। दृश्य से अदृश्य हो जाना चाहती है। उसे छूट भागने के लिये मानो स्टोर में आ जमे चूहे संकेत दे रहे थे।

''आप सो जायें। स्टोर में चूहे हैं।''

तानी उठ गई। उसका इस तरह बीच में उठ कर जाना यशस्वी को आहत करता यदि पहले ऐसा न हुआ होता। जानता है इस तरह अस्थिर, अशांत, असहज, असंपृक्त रहती है कि कब कोई काम करने लगेगी, कब हाथ में लिया काम अधूरा छोड़ देगी, बिल्कुल गैरजिम्मेदाराना भाव से विषयान्तर कर देगी कहा नहीं जा सकता। वह जैसे घर में उपस्थित होकर भी उपस्थित नहीं रहती है।

तानी झाड़ू और बाँस से स्टोर में ठक-ठक करती रही। देर बाद शयन कक्ष में आई। आहिस्ता से बिछावन पर लेट गई। यशस्वी को देखा फिर खिड़की से दिखते आकाश को देखा - मैं भी आकाश की तरह शून्य होती। भीतर-बाहर से खाली। न संवेग-आवेग, न आशा-निराशा, न इच्छा-अनिच्छा। आज वह स्थिति आ गई है जिसकी मैंने प्रतीक्षा की है। लेकिन लग रहा है न आती तो बेहतर होता।

तानी साइकियाट्रिस्ट के पास जाना नहीं चाहती थी लेकिन गई कि यशस्वी ऐसा चाहता था। कितनी सिटिंग। वह चुप बैठती और घर

आ जाती। लेकिन चिकित्सक भीतर की परतें खुलवाने में सिद्धहस्त था। आखिर तानी ने बता दिया - उसका परिवार गोस्वामी होमियो हॉल में इलाज कराता था। वह डैन्ड्रफ, फालिंग आफ हेयर, एक्ने - पिम्पल जैसी आम दिक्कतों को लेकर होमियो हाल जाती रहती थी। तभी पता चला छोटी शीशी में बंद नन्हीं सफेद गोलियाँ दिल में गहरे उतर गई हैं। वह अक्सर होमियो हाल जाने लगी। बलभद्र गोस्वामी उसे अच्छा लगने लगा। सफेद शर्ट अच्छी लगने लगी कि बलभद्र अक्सर पहनता है। तानी के पिता अक्सर कहते बड़े डॉक्टार साहब (बलभद्र के पिता) जिस योग्यता, मृदुता, एकाग्रता के साथ काम करते हैं वही तरीका बलभद्र का है। सुनकर वह मुग्ध हो जाती। लेकिन जब बड़े डॉक्ट र साहब, तानी का रिश्ता माँगने घर आये, उसके पिता ने स्पष्ट कहा ''बलभद्र आपकी संतान नहीं है। गोद लिया गया अनाथ बच्चा है। जिसकी जाति-कुल-गोत्र आप भी नहीं जानते।''

''मैंने बलभद्र को अपना नाम दिया है। अब मैं उसका पिता हूँ। आप कहते हैं अनाथ है।'' बड़े डॉक्टर साहब लाचार थे या क्रुद्ध ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता।

''अनाथ को अनाथ ही कहा जाता है।''

इस उत्तर के साथ तानी के पिता को होमियोपैथी में विश्वास न रहा और वह जीते जी मर गई। यह है तानी की गुत्थी?

चिकित्सक ने अपने केशों पर हथेली फेरी-

''यह है आपकी बेचैनी। बेचैनी में आप हर काम हड़बड़ी में करती हैं या बहुत धीमे करती हैं।''

''आप कैसे जानते हैं?''

''यशस्वी जी से पूछे गये प्रश्नों के आधार पर।''

''ओह।''

''यशस्वीजी बलभद्र प्रसंग को जानते हैं?''

''कह नहीं सकती।''

''आपको बलभद्रजी अब भी अपना लेंगे?''

''कह नहीं सकती।''

''आप बलभद्र के पास जाना चाहती हैं?''

''कह नहीं सकती।''

''मुझसे कह सकती हैं।''

''वापस लौटना गलत होगा।''

''उसी उत्साह से रहें जैसा पत्नी को रहना चाहिये।''

''नहीं रह पाती।''

''क्यों?''

''सोचती हूँ जिंदा क्यों हूँ? जीने का मकसद खत्म' हो गया है।''

''जिंदगी इतनी महत्वहीन और फालतू नहीं होती कि मकसद खत्म हो जायेंगे। आपके पास घर है, पति हैं, बच्ची है।''

तानी ने बार-बार योजना बनाई बलभद्र के पास चली जाये। कम से कम दो बार बैगेज तैयार कर लिये थे। साहस नहीं कर पाई। सामाजिक भय, पति की सामाजिक हैसियत, बचपन के संस्कार --- कुछ था जो कमजोर कर देता था। उसने बलभद्र के पास जाने का विचार छोड़ दिया। न विचार करेगी न निर्णय। लेकिन आज जो स्थिति बनी ---? तानी ने दबी नजर से यशस्वी को देखा। सो चुका है। कमाल का है यह आदमी। बात स्पष्ट होने पर मात्र दो शब्द कहने चाहिये थे, गेट आउट। लेकिन कह रहा है तानी तुम अपना सुख ढूँढ़ लेने के लिये मुक्त हो। यशस्वी ने आम पतियों की तरह उस पर अपनी इच्छा, रुचि, पसंद, सलाह नहीं थोपी इसलिये वह उसका सम्मान करती है लेकिन जुड़ाव, लगाव, राग जैसे भाव कभी महसूस नहीं किये।

और आज? ---- आज जब निर्णय ले सकती है लग रहा है न चाहते हुये भी वह इस शहर, इस घर, इस व्यक्ति से अज्ञात सीमा तक जुड़ चुकी है। यशस्वी को कार्यालय से लौटने में विलम्ब होता है तो आशंका सताती है। हाँ, लौट आने पर चिंता या प्रसन्नता प्रकट नहीं करती है। जब गाँव से चली थी सास ने कहा था ''दुलहिन, हमारा लड़िका बड़े दुःख में पला है। दस बरिस का रहा जब इसके बप्पा खतम हो गये। तुम इसे कबहूँ दुःखी न करना। यह तुम्हें बहुत सुखी रखेगा। यह किसी को दुःख देना जानता नहीं है।''

तानी ने पैर सिकोड़ कर सोई बिट्टू को देखा। सोता हुआ शिशु मासूम लगता है। वह अपनी खीझ, तड़प, हताशा बिट्टू पर उतारती है। बिट्टू पिट कर, रोकर फिर उसकी गोद में समा जाती है। माँ के भीतर क्या चल रहा है वह नहीं जानती। जानती है, माँ की गोद बहुत सुरक्षित होती है।

लग रहा है मूल्यांकन कभी नहीं किया लेकिन इस घर में कुछ ऐसा है जो बाँधता है। बिट्टू और यशस्वी ही नहीं बल्कि घर का प्रत्येक ओना-कोना। एक-एक वस्तु। ध्यान नहीं दिया लेकिन इस घर की दीवारों और छत से भी लगाव हो गया है। इस घर और यशस्वी को छोड़ना अब सरल नहीं है। बिट्टू को तो बिल्कुल नहीं। स्नेह के तंतु पकड़ते-घेरते गये हैं। समय दबे पाँव चलता हुये उसे पन्नीक लाल चौराहे के गोस्वामी होमियोहॉल से ऑफीसर कालोनी के बँगले ई-सेवेन तक ले आया है। यह ई-सेवेन, इसमें रहने वाले दो प्राणी, वातावरण उसकी आदत बन गये हैं और आदत छूटेगी नहीं।

चिकित्सक ने ठीक कहा था। तूफ़ान को आने दो। उफान को सीमा छूने दो। बर्फ को पिघलाने के लिये निर्धारित तापक्रम दो। भरपूर वार करो यदि बंद दरीचों को खोलना चाहते हो। जोड़ ढीले पड़ेगें, दरीचे खुलेंगे। तूफ़ान --- उफान --- तापक्रम --- वार ----। तूफ़ान थमने को है --- उफान बैठ रहा है --- बर्फ पिघल रही है --- बंद जोड़ ढीले पड़ रहे हैं ----। सुबह यशस्वी के उठने से पहले तानी चाय बना लाई। ट्रे साइड मेज पर रख यशस्वी के समीप बैठ गई -

''चाय।''

''इतनी जल्दी?''

''जल्दी कहाँ? सुबह हो गई है। स्त्री अपना घर नहीं छोड़ना चाहती। निकाल दी जाये अलग बात है। चाय।''

प्याला पकड़ा रही तानी के स्वर में कुछ है। जो अब तक नहीं था। यशस्वी को केशों पर हथेली फेरते चिकित्सक याद आये - तूफ़ान का गुजर जाना अच्छा होता है क्योंकि तूफ़ान के बाद शांति होती है। ❐

द्वारा श्री एम. के. मिश्र, जीवन विहार अपार्टमेन्ट, फ्लैट नं0 7, द्वितीय तल महेश्वरी स्वीट्स के पीछे रीवा रोड, सतना (म.प्र.)-485001
मोबाइल : 8269895950

शिकायत

❐ सौम्या दुआ

आज हिंदी जी....
आयी थीं घर....
हाल चाल पूछा....
मौसी के बारे में बताया....
अच्छाई बुराई हुई....

कुछ नाराज़ थी....
बोली साल में
एक दिन
मेरे नाम का
ढोल बजाते हो
लेकिन कुछ मिनट
फेसबुक पर
व्हाट्सएप पर
मुझे लेकर
हिन्दी दिवस की
बधाई देकर

#TATA
#Bye Bye
#Good evening
#Good night

कह कर
विदा ले लेते हो। ❐

बरता हुआ पुल ❐ राजेन्द्र उपाध्याय

मैं एक बरता गया पुल हूँ
बरसों बरस मैं बरता गया हूँ
इस किनारे से उस किनारे तक ले गया हूँ
तुम्हारे पुरखों को
ऊफनती बरसातों में आँधी तूफानों में
सुबह, शाम, रात-दिन
मैं आया हूँ तुम्हारे काम

बारातों और शवयात्राओं में बरता गया हूँ
ले गया हूँ इस किनारे से उस किनारे तक
हर छोटे-बड़े ऊंच-नीच को
ढोर, गंवार, शुद्र, पशु, नर-नारी को
गरीब को और अमीर को
एक साथ मैंने बिठाया है
अपनी गोदी में सबको दुलराया है
झूला झुलाया है।

मैं एक बरता गया पुल हूँ
भूकंपों में भी मैं रहा हूँ अडिग
मैंनें तुम्हें सही सलामत
तुम्हारी चौखट तक छोड़ा है।

क्या हुआ बरसों बरस बरता जाकर
मैं अब बूढ़ा हो गया हूँ
क्या हुआ कि मैं
काल की मार से भूल गया हूँ
क्या हुआ कि मैं झूल गया हूँ

मैं पुरानी लकड़ी का ही सही
फ़िर भी
मेरे बाजुओं में अभी भी है ताकत
अभी भी तुम्हारा बोझा उठा सकता हूँ
उठा सकता हूँ, तुम्हारी पालकी
अभी भी कितनी ही बरसातों में
कितनी ही बारातों
कितनी ही दिवालियों में
कितनी ही शवयात्राएं
मैं ढो सकता हूँ

मुझे यों न छोड़ दो इस तरह
काँटों की दीवार से
मुझे न बाँधो इस तरह।

याद करो
मैं तुम्हें तब भी ले जाता था
जब तुम अपने दादा की गोद में थे
और जब अपने पिता की
ऊंगली पकड़कर चलना सीखे
और जब स्कूल जाने लगे
मोटर साईकल से कॉलेज जाने लगे
और जब तुम सेवानिवृत्ति के बाद
टहलने निकले हो
अपने पोते के साथ
तो मुझे बिलकुल ही भूल गये
अपने पोते को तो
मुझ बूढ़े को आशीर्वाद देने देते।

क्या हुआ मेरी बगल में खड़ा है
एक और नया पुल
पर उसकी नींव कमजोर है
वह अभी से झूलने लगा है

उसमें इतनी बरसातों,
इतनें आघातों को सहने की ताकत नहीं
वह नहीं उठा सकता मेरे जितना बोझ
मैं अभी भी ले जा सकता हूँ,
बारातें और शवयात्राएं
मेरे काई-लगे बाजुओं में
भी ताकत है।

मैं एक दबा कुचला बरता हुआ
पुल ही सही
अभी भी तुम्हारे काम आ सकता हूँ। ❐

rajendra.upadhyaya58@gmail.com
Mob. 9953320721

संस्मरण

गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा

▫ विजया सती

दिल्ली के हिन्दू कॉलेज में हरी-भरी घास हमेशा रंग-बिरंगे फूलों के साथ मुस्कुराती मिलती, कॉलेज के पिछले हिस्से में खेल का विशाल मैदान, कैंटीन के समोसों की खुशबू से हाथ मिलाता. उसके बाद पड़ती एक संकरी गली जो सीधे किरोड़ीमल कॉलेज पहुंचा देती थी वहां पढ़ाते थे मेरे गुरुवर अजित कुमार !

गुरुवर अजित कुमार, कवयित्री सुमित्रा कुमारी सिन्हा के पुत्र, सप्तक कवयित्री कीर्ति चौधरी के बड़े भाई, बीबीसी फेम ओंकारनाथ श्रीवास्तव के सखा, सहपाठी और अनन्तर संबंधी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हमें समकालीन हिन्दी साहित्य के विकल्प प्रश्न पत्र में अज्ञेय की कविता 'असाध्य वीणा' पढ़ाने आए.

इस कविता के सहज, गहन, संवेदनशील व्याख्याता के रूप में वे सबके मन को भा गए... *आ गए प्रियंवद केश कम्बली गुफागेह* ..अपने स्वर और मुद्राओं से कविता के पात्रों को साकार कर देने वाले कविवर !

इनके मार्गदर्शन में ही मैंने कुंवर नारायण के 'आत्मजयी' पर एम.ए का लघु शोध-प्रबंध लिखा कि काव्य-स्मृति की प्रसिद्ध पीएचडी का शोध विषय सर ने सुझाया था - 'बोलचाल की हिन्दी और बच्चन की काव्य भाषा' उस पर काम करने की अनुमति न मिली तो चुने गए प्रिय कवि भवानी प्रसाद मिश्र, डॉ उदयभानु सिंह विभागाध्यक्ष थे, उनके साथ सर मुझे को-गाइड के रूप में मिले इन दोनों कवियों पर काम करते हुए, सर से हिंदी कविता की जो समझ पाई, उसे शब्दों में कहना मुश्किल है।

छात्र जीवन से अध्यापन तक - समय के एक लम्बे अंतराल में सर से भरपूर संवाद करने का अवसर मिला, उनके सानिध्य में कितनी ही चर्चाएं सहज ही आ जुड़ती - साहित्यिक गतिविधियां, चर्चित पुस्तकें, अच्छी फिल्में, सामयिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक मुद्दे या फिर किसी अच्छे शे'र, अच्छी कविता का पाठ ' सन्नाटा' और 'घर की याद' कविता पहले-पहल सर के भावपूर्ण स्वर में सुनकर ही तो भवानी प्रसाद मिश्र से मन जा जुड़ा था।

धीरे-धीरे सर मेरे फ्रेंड, फिलोसॉफर और गाइड हुए और इस भूमिका में अनवरत राह दिखाते रहे सर ने मुझे बताया कि अब मैं छात्रा नहीं, अध्यापिका हूं। हिन्दू कॉलेज में पहले दिन की 'यंग लेडी' शब्द कथा मैं उन्हें बता चुकी थी, वे अक्सर याद दिलाते— 'हां अब यंग लेडी हो तो वैसे विहेव करो, छात्र जीवन की अपनी भाषा की कुछ दुर्बलताएं और तौर-तरीके छोड़ो'।

सर हमेशा रचनात्मक लेखन के लिए प्रोत्साहित करते हुए कहते- ''हमारे गुरुवर बच्चन जी कहते थे कि पहले सौ पन्ने पढ़ो, तब, एक पन्ना लिखो.'' यह बात मैंने गांठ बांध ली मेरी टूटी-फूटी कविताओं के पहले पाठक सर ही बने !

मुझे खूब याद है एक दिन सर ने अंग्रेजी की पुस्तक पढ़ने को दी थी - पोएम्स दैट टच द हार्ट। सुनहरे शब्दों से जड़ी खलील जिब्रान की डायरी भी। उस डायरी के कितने ही पन्ने मर्मस्पर्शी कविताओं से रंगे हुए, आज भी मेरे पास सुरक्षित हैं।

उमर खैय्याम, फिट्ज़ेराल्ड, सार्त्र, कामू, एज़रा पाउंड, इलियट और भी कितने ही नाम हैं, इन सभी से परिचय का सूत्र सर से ही मिला। ''हमारे गुरुवर बच्चन जी कहते थे'' - लगभग हर बातचीत में उनका यह प्रिय वाक्य उभर आता और तकिया कलाम था- ''ये है कि।'' हर वाक्य इसी से शुरू होता. ....भई ये है कि तुम लोग फ़िराक को पढ़ो, गालिब को जानो। हमें गुल-ए-नग्मा से परिचित कराते हुए सर ने यह पंक्तियां सुनाईं—

ग़ज़ल के साज उठाओ, बड़ी उदास है रात
सुखन की शमा जलाओ, बड़ी उदास है रात
कोई कहे ये ख्यालों से और ख्वाबों से
दिलों से दूर न जाओ बड़ी उदास है रात !
और इस तरह फ़िराक हमारे प्रिय शायर हुए.

अब भूल गई हूँ शायर का नाम, पर अपनी जीवन दृष्टि को सर अक्सर यूं व्यक्त करते—

फुगां कि मुझ गरीब को हयात का ये हुक्म है
समझ हरेक राज़ को मगर फरेब खाए जा!

और हंसते हुए कहते—देखो मेरे लिए जीवन का यही आदेश है कि सभी रहस्यों को जानूं लेकिन धोखा खाता रहूँ!

मेरे आरंभिक अध्यापक जीवन की तमाम छोटी-मोटी परेशानियों को सर सुलझाते रहे। कितनी ही कविताएं, कितना गद्य, भवानी प्रसाद मिश्र और कुंवर नारायण, नई कविता, सप्तक काव्य, हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि पर कितनी बातें, कितने प्रसंग, कितने चुटकुले-मुहावरे सर के मुख से सुनकर, वह दुनिया हमारी जानी पहचानी हो गई। सर ने मुझे कविता के गहन अर्थों की खोज करना सिखाया। मुझे याद आती हैं आपकी कही वे पंक्तियाँ— कविता की दो लिखित पंक्तियों के बीच एक अलिखित पंक्ति होती है, उसी में कविता का अर्थ निहित होता है. Between the lines कविता क्या कह रही है, उसे समझने की कोशिश करो।

बहुत-बहुत संभव है कि अपनी कक्षाओं में मैंने सर के कथनों को दोहराया हो !

समय तो पंख लगा कर उड़ता ही रहा, तमाम व्यस्तताओं ने घेरा और सर का स्वर भी बदला - ''अरे भई बहुत खिट-खिट है जीवन में''- सर का बार-बार यह कहना याद आता है लेकिन हम देखते रहे कि यह खिट-खिट दरअसल सर की प्रिय व्यस्तता का ही दूसरा नाम है !

फिर वह समय भी आया जब सर लन्दन में, बहन कीर्ति के यहां, आकस्मिक रूप से

अस्वस्थ हुए, लम्बे इलाज के बाद अपने मनोबल और जीवनेच्छा से उबरे और भारत लौटे।

रोग के झटकों से उबरना और अपने प्रिय कामों में जुटे रहना – यही तो था सर का जीवन क्रम !

सर ने जीवन को स्थिरता-शांति प्रदान करने वाले तत्वों की खोज अपने तईं की और उनके अनुरूप जिए। बहन कीर्ति चौधरी के अप्रकाशित लेखन का प्रकाशन सर के जीवन का ऐसा ही एक मिशन था जब कीर्ति चौधरी की समग्र कविताएं आई और फिर समग्र कहानियां, सर आंतरिक प्रसन्नता से सराबोर हुए।

ओंकारनाथ श्रीवास्तव जी की पुस्तक ''दुनिया रंग बिरंगी'' के प्रकाशन ने सर को कितनी संतुष्टि दी ! स्नेहमयी चौधरी के कविता संकलनों की न केवल साज-संवार, बल्कि उनसे निरंतर आग्रह-मनुहार कि स्नेह ! अब संग्रह आना चाहिए, इतनी कविताएं हो गई हैं !.. सर के जीवन के सहज सत्य रहे

पांडुलिपियां असंख्य थी, सर डूबे रहते-..संचयन-सम्पादन, प्रतिलिपियां, प्रकाशक !

आज सर की अत्यधिक प्रिय कविता की पंक्तियां याद आ रही हैं....खैय्याम, फिटज़रेल्ड, बच्चन तीनों के प्रसंग में सार्थक पंक्तियां –

Ah Love ! could you and I with him conspire
To grasp this sorry scheme of things entire
Would not we shatter it to bits and then
Remould it nearer to the heart's desire !

यह सर का जीवन स्वप्न ही था .. इस बेढ़ब दुनिया को तोड़-मरोड़ कर अपने अनुरूप कर लूं।

बतरस और गप्पाष्टक भी सर के प्रिय शब्द रहे। इन्हीं के तहत कभी-कभी सर अपने बचपन में पहुँच जाते.. 'मां मधुर स्वर में गाती और गीत लिखती थीं, पिता चौधरी राजेन्द्र शंकर 'युग मंदिर', उन्नाव के प्रकाशन कार्यों में व्यस्त रहते, निराला जी उन्नाव आकर घर में ठहरते पिता के नाम से ही हम भी अजित शंकर चौधरी हुए, कीर्ति प्रिय बहन बिन्नो थी, उनके पति ओंकार नाथ श्रीवास्तव, सहपाठी और मित्र ...सिर्फ ओंकार छोटे भाइयों अभय और अमरेन्द्र, पूनम और साधना के प्रति आपकी सहज प्रीति शब्दों में छलकती।

हम सर के घर में हरीश चन्द्र सनवाल जी की उपस्थिति को नहीं भूल सकते. वे पारिवारिक सदस्य की तरह सर को समझाते, डांटते, घर की व्यवस्था करते और रूठते भी।

बेटू.. पवन कुमार चौधरी, पुत्रवधू सुचित्रा, अगली पीढ़ी में चिंटू-मिंटू, सेतु-मीतू सर के जीवन के आधार स्तम्भ रहे, शब्दों से नहीं, अनुभव से जाना।

बचपन कई-कई छवियों के साथ सर की स्मृति में आता ... मेले से एक ख़ास खिलौना खरीदने का किस्सा।...लगभग सर के शब्दों में याद आता है- ''उन्नाव और आसपास मेले में मेरा प्रिय खिलौना था— उलूक पाठा यानी उल्लू का पट्ठा। यह गोल पेंदी वाला एक ऐसा बबुआ होता जिसे सब ओर से चपत लगा कर गिराया जा सकता था, पर वह हरबार सही मुद्रा में खड़ा हो जाता। मैं भी वही हूँ, जिन्दगी के थपेड़े गिराते हैं, मैं बार-बार उठ खड़ा होता हूं ।''

एक मज़ाक और सुनाते थे सर ..मुंह में पंजीरी भरकर दोस्त के ठीक मुंह के सामने जाकर हम कहते— हमारे फूफा जी आए हैं...और सारी पंजीरी की फुहार दोस्त के मुखारविंद पर फ़ैल जाती।

सर की कही यह बात मेरे मन से कभी न उतरी.. हँसते हुए सर ने कहा था – 'यह तो मैं अपनी जिन्दगी में कभी करने-कहने वाला नहीं कि ...मैंने पानी पी लिया, मेरी घोड़ी ने पानी पी लिया, ऐ कुंए तू ढह जा'

कानपुर के डीएवी कॉलेज से अध्यापन आरम्भ करने वाले सर, दिल्ली के विदेश (?) मंत्रालय में बच्चन जी के सहयोगी होते हुए, दिल्ली विश्वविद्यालय में आए। सर के मेल-मिलाप के दायरे से बच्चन जी, डॉक्टर नगेन्द्र, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, मैडम निर्मला जैन, मन्नू भंडारी, भारत भूषण अग्रवाल-बिंदु अग्रवाल, केजी और अर्चना वर्मा, शैल कुमारी मैडम .. और भी कितने-कितने साहित्यिक परिचितों को जाना—

सर ! आपका जीवन था कि जादूगर की पिटारी ! आपके जीवन की पुटलिया से जादूगर के पिटारे की तरह अभी कितना कुछ आना शेष था, आपने क्यों कह दिया...

व्यस्त नहीं अस्त हूं मैं
बस समझो कि नष्ट हूं मैं !

आपके बहुत से विद्यार्थी देश-दुनिया में बिखरे हुए हैं सबके मन में आपकी बहुत सी स्मृतियां और छवियां होंगी, मेरे मन की भी यह एक.. इस कविता में छिपी .. आपकी स्मृति को ये पंक्तियां समर्पित करते हुए आप ही का कहा याद आ रहा है— ''मन की बात कहने से आदमी छोटा नहीं होता''. कविता है— भवानी प्रसाद मिश्र की, शीर्षक 'कमल के फूल'...

फूल लाया हूं कमल के
क्या करूं इनका ?
पसारें आप आंचल
छोड़ दूं
हो जाए जी हल्का !
.....
और अंत में कविता कहती है ..

ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के हैं
इन्हें हूं बीच से लाया
न समझो तीर पर के हैं !

सर ! आप ने ही समझाया था इस कविता का अर्थ कि हृदय की गहराई से निकले अछूते संवेदन कितने मूल्यवान होते हैं ! आपकी बदौलत मैंने जीवन भर ऐसे संवेदनों को संजोया और उल्लास का अनुभव किया। मेरे जीवन में आपकी यह अनूठी देन है। मेरे विद्यार्थी जीवन को छोटी-छोटी अनगिनत खुशियों से भर देने के लिए। केवल हार्दिक आभार भर कह कर कैसे थम जाऊं गुरु जी ! ❐

vijayasatijulyv@gmail.com
Mob. 8587093235

लघु कथा

धैर्य

□ प्रिया देवांगन 'प्रियू'

'हे गुरुवर! अब मुझे नहीं रहना है इस संसार में।' बालक ने संत से रूठे स्वर में अपना विचार प्रगट किया।

'किन्तु बालक! बगीचे की देखभाल कौन करेगा और जिस लक्ष्य को लेकर तुम यहाँ आए हो उसे पूर्ण किए बिना कैसे जा सकते हो?' संत जी अपने मस्तक पर चिंता की लकीरें बनाते हुए बोले।

'अच्छा....! आपको अपने बगीचे की पड़ी है संत जी; मेरे भविष्य की नहीं... ?'

'मेरे सभी साथीगण अपने-अपने लक्ष्य प्राप्त कर जीवन पथ पर अग्रसर होने लगे हैं और मैं वहीं का वहीं एक पत्थर की मूरत की भांति ही खड़ा हूँ।' बालक ने कहा।

'ओह! तो ये बात है, किन्तु बालक इसका तात्पर्य है कि तुम अपने आप को कमजोर, असहाय, निर्बल समझते हो; मैंने तो कभी इसका ज्ञान नहीं दिया है। हमेशा सकारात्मकता की ओर बढ़ाने का प्रयास किया है।' संत जी अपनी दाढ़ी में हाथ फेरते हुए बोले।

'नहीं.....नहीं अब मुझे नहीं जीना।' बालक बहुत हठ करने लगा।

'जैसी तुम्हारी इच्छा! किंतु बालक, इस संसार से जाने से पहले मेरा एक छोटा सा कार्य कर दो फिर मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा।' संत, बालक को आज्ञा देते हुए बोले।

बालक मन ही मन क्रोध से लाल होता जा रहा था। उसकी काया क्रोध से सूर्य की तेज अग्नि की भांति तपने लगी थी।

मन ही मन बुदबुदा रहा था— 'मैंने तो सोचा था इतने बड़े तपस्वी के साथ रहता हूँ कुछ न कुछ तो उपाय जरूर बताएँगे जिससे मैं अपना लक्ष्य हासिल कर पाऊँगा और दूसरों की भांति खुश रहकर जीवन यापन करूँगा। अब मुझे पता चला संत श्री मुझसे सिर्फ कार्य करवाते हैं प्रेम तो तिनके की भांति भी नहीं झलकता।''

फुसफुसाता हुआ बालक संत के पीछे-पीछे चलने लगा।

संत सब कुछ समझ चुके थे। बालक के मन में क्या बातें घूम रही हैं।

'देखो ये अमरूद का वृक्ष है।' संत बोले।

'गुरुवर; क्या आप मुझे इस अमरूद के वृक्ष को दिखाने बगीचे में लाए हैं?' बालक बोला।

'हाँ।' बालक आश्चर्य से संत के चेहरे की ओर देखने लगा।

'इसकी अब जरूरत नहीं है इसे काटना ही उचित लग रहा है।' संत बोले।

''परन्तु क्यों? इतना हरा-भरा फलदार वृक्ष है उसे मैं काट कर पाप का भागीदार क्यों बनूँ गुरुवर? ना..... बाबा.... ना मैं आपकी आज्ञा नहीं मान सकता।'' बालक दोनों हाथ जोड़ते हुए बोला।

''लेकिन अभी तक तो एक भी बार फल नहीं लगे हैं न इसमें?'' संत बोले।

''इस वृक्ष के लिए तुमने बहुत मेहनत की है; समय-समय पर जल, खाद और न जाने क्या-क्या उपाय किया है; ताकि इसमें जल्द ही फल लग सके लेकिन फल लगते ही सारे फल टूट जाते हैं, फिर तुम्हारी मेहनत तो पानी में गई न? इससे अच्छा है काट दो।'' संत कुल्हाड़ी को आगे की तरफ बढ़ाने लगे।

''नहीं..... नहीं..... संत जी मैं ऐसा नहीं होने दे सकता क्योंकि इसे तो हमने सारे वृक्षों के बाद लगाया है, अभी समय ही कहाँ हुआ है। देर से लगा है इसलिए देर से फल देगा।''

''अच्छा....!'' संत जी मुस्कुराते हुए ध्यान से बालक को देखकर बोले- ''वत्स! तुम्हें तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर मिल गया।''

बालक आश्चर्य से संत जी के तरफ देखकर बोला- 'वो कैसे?'

''वत्स! जिस प्रकार से वृक्ष में अनेक बार फल लगते हैं और टूट कर नीचे गिर जाते हैं, पत्तियाँ झड़ जाती हैं; इसका मतलब ये नहीं कि पेड़ को काट दिया जाए। वे भी कड़ी तपस्या करते हैं; ऋतु के आते ही फिर से उनमें नई शाखाएँ आती हैं, फल लगते हैं और छायादार फलदार वृक्ष हमें खट्टे-मीठे फल दे कर जीवन में खुशियाँ बाँटते हैं।''

''तुमने ही कहा कि इसका बाद में रोपण किया है इसलिए देर से फल लगेंगे; ठीक उसी प्रकार तुम भी तो आश्रम में सारे बालकों के आने के बाद आए हो न, इसलिए तुम्हें थोड़ा परिश्रम और कष्ट तो सहना पड़ेगा। एक साधारण सा वृक्ष स्थाई रहकर जब हार नहीं मानता है फिर तुम मनुष्य होकर कैसे हार मान सकते हो? असफलता के हाथ लगने से जीवन समाप्त नहीं किया जाता है बालक! कड़ा परिश्रम करो; समय आने पर असंभव भी संभव हो जाता है। सब समय के अनुसार ही होता है।

बालक अपने गुरु के चरण में नतमस्तक होते हुए बोला— ''मुझे माफ करना संत श्री, मुझे समझने में भूल हो गई। आज आपने मेरे अंतर्मन के बंद नयन के पट खोल दिए।'' मुस्कुराता हुआ बालक अमरूद के वृक्ष को निहारने लगा। □

राजिम, जिला-गरियाबंद, छत्तीसगढ़
Priyadewangan1997@gmail.com

उर्दू कहानी

पीले-पत्ते

▫ इंतज़ार हुसैन
हिन्दी रूपांतर ▫ खुर्शीद आलम

अगले दिन वह फिर उसी गली में गया और उसी दरवाज़े को खटखटाया, फिर वही कोमल पैरों वाली ड्योढ़ी पे आई और फिर उसने नीची नज़रों के साथ भिक्षा पात्र आगे कर दिया और भिक्षा ले के चला गया। यही उसका नियम था। कितनी ड्योढ़ियों से कितनी नारियों के हाथों से उसने भिक्षा ली थी मगर कभी नज़र उठा के किसी को नहीं देखा, उसने जान लिया था कि पंच इंद्रियों में आँख सबसे ज़्यादा पापी है, जो दिखाई देता है, वह सब माया का जाल है। देखने वाला माया के जाल में फँसता है और दुख उठाता है। सो आँख दुख देती है, सो मत देखो और मत फँसो और मत उठाओ। सो वह नहीं देखता था कि भिक्षा किस हाथ से मिल रही है, सो उसने यहाँ भी नहीं देखा कि भिक्षा देने वाली कौन है। कैसी उसकी मूरत है, बस उजले कोमल पैर उसकी झुकी नज़रों के सामने पल भर के लिए आते और ओझल हो जाते। वह इस ड्योढ़ी पर एक दिन आया और दो दिन आया और आता चला गया क्योंकि भिक्षा इस ड्योढ़ी से बहुत श्रद्धा के साथ मिलती थी।

वह बसंत पंचमी का दिन था, गली-गली, द्वारे-द्वारे पीली साड़ियाँ लहरा रही थीं, मानो सरसों खेतों में नहीं गलियों में फूली है और गेंदा क्यारियों में नहीं ड्योढ़ियों में महका है। उसने आज फिर उसी द्वार पर जाकर सांकल बजाई और फिर कोमल पैरों वाली ड्योढ़ी पे आई। पर आज उन पैरों में मेहंदी लगी थी। उसने झुकी नज़रों से उन पैरों को देखा और अचंभा किया कि गोरे पैरों में मेहंदी कैसी रचती है और पैर क्या से क्या बन जाते हैं। वह अचंभे से मेहंदी रचे गोरे कोमल पैरों को तकने लगा। यह ध्यान ही न रहा कि उसे भिक्षा भी लेनी है।

''भिक्षु जी! जल्दी करो त्योहार का दिन है।'' और उस आवाज़ के साथ कि यह आवाज़ आज उसने पहली बार सुनी थी भिक्षा पात्र के साथ-साथ उसकी नज़रें भी उठ गईं और फिर उठी ही रह गईं। क्या मोहिनी मूरत थी, मुख चंद्रमा जैसा, बाल घटा से, आँखें मृग की सी, गर्दन मोरनी की सी, गात भरी-भरी, कमर पतली-पतली, साड़ी बसंती, माथे पे लाल बिंदी, वह सुध-बुध खोये टकटकी बाँध, उसे तकने लगा। वह सुंदरी ऐसी हड़बड़ाई कि भोजन से भरी थाली हाथ से गिर पड़ी।

संजय उस शुभ दिन ख़ाली पात्र के साथ अपने स्थान पर वापस आया। मन को एक चिंता लग गई थी, क्या मुझे मोह ने आ घेरा है? बहुत विचार किया, कुछ समझ में न आया जैसे उसकी मत मारी गई हो। आनंद के पास पहुँचा और बोला कि ''प्रभु! मैं व्याकुल हूँ।'' आनंद ने उसे देखा जैसे टोह रहा हो, ''कारण?''

''नारी!''

''नारी?''

''हाँ नारी।'' और संजय ने अपनी सारी बिपता कह सुनाई।

आनंद अचंभे के साथ आँखें खोले उसकी बिपता सुनता रहा, फिर उसने आँखें मूँद लीं, आँखें मूँदे चुप बैठा रहा, फिर आँखें खोलीं और बोला, ''बंधु! गलियाँ और ड्योढ़ियाँ मोह का जाल हैं, भिक्षुओं का नियम यह है कि वो गलियों में रुकते नहीं और, ड्योढ़ियों में ठहरा नहीं करते, गली-गली, द्वारे-द्वारे फिरते हैं, भिक्षा आज यहाँ से कल वहाँ से, पर मूर्ख तूने इस नियम का पालन नहीं किया, तूने वही किया जो सुंदर समुद्र ने किया था।''

''सुंदर समुद्र ने क्या किया था?''

''तू नहीं जानता सुंदर समुद्र ने क्या किया था?''

''नहीं प्रभु! मैं नहीं जानता कि सुंदर समुद्र ने क्या किया था।''

तब आनंद ने संजय को सुंदर समुद्र की कहानी सुनाई।

सुंदर समुद्र की कहानी

जन्माष्टमी का दिन था। सुहानी रुत, मंगल समय, भादों की रिमझिम हो रही थी, एक हवेली में एक बुढ़िया और बुढ़ा धारों धार रो रहे थे।

एक कंचनी उधर से गुज़री तो उसने अचरज किया, ''हे दुखियारो! तुम पे क्या बिपता पड़ी है कि आज जन्माष्टमी के दिन जब हर नर-नारी, बूढ़ा-बालक उत्सव मनाता है, तुम आँसुओं की गंगा-जमुना बहा रहे हो।'' वो दुख से बोली, ''अरी हमारे लिए न अब जन्माष्टमी है न होली-दीवाली है, पूत के बिछुड़ने का रोग ऐसा लगा है कि हर घड़ी उसे याद करते हैं और रोते हैं।''

''पूत बिछुड़ गया?''

''अरी हमारे एक ही तो पूत था, वो हमसे बिछुड़ गया और हमारी दुनिया अंधेरी कर गया।''

''कैसे बिछुड़ गया?''

''एक दिन बुद्ध देव का इस नगर से गुज़रना हुआ, उनके उपदेश ने उसे ऐसा बदला कि कहाँ तो छैला बना फिरता था और कहाँ ये कि सर मुंडाया और पीला वस्त्र पहना और शाक्य मुनि के पीछे हो लिया।''

''उस पूत का नाम क्या है?''

''सुंदर समुद्र।''

''अच्छा मैं तुम्हारे पूत को वापस लाऊँगी।''

''अरी तू कैसी बात करती है, शाक्य मुनि के संघ में जाके कौन वापस आया हैं।'' कंचनी ने ताव दिखाया, बोली, ''वो अपने समय का मुनि है तो मैं भी अपने समय की कंचनी हूँ।''

यह कह वह वहाँ से चली गयी। शाक्य मुनि का अता-पता लिया कि इन दिनों कहाँ बिराजते हैं और किस नगर में उनके भिक्षु भिक्षा लेने पहुँचते हैं। उसी नगर पहुँच एक ऊँची हवेली ले वहाँ रहने लगी। सुंदर समुद्र हर रोज़ भिक्षा पात्र ले बस्ती में पहुँचता, कभी इस गली में कभी उस गली में। एक रोज़ इस गली में आया और इस ऊँची हवेली की ड्योढ़ी पे पहुँचा। वह कंचनी तो बाट ही देख रही थी, थाल लेकर खुद ड्योढ़ी पर आई, ऐसी चतुराई से बात की और भिक्षा दी कि सुंदर समुद्र ने अगले दिन फिर उसी गली का फेरा लगाया और उसी ड्योढ़ी पर आया। फिर वह उस ड्योढ़ी से ऐसा हिला कि द्वारे-द्वारे जाना छोड़ा, रोज़ उस ड्योढ़ी पर जा खड़ा होता और भिक्षा पात्र भरवा के लौटता। एक दिन चतुराई से कहने लगी कि ''भिक्षु जी, तुम्हारे नियम में कोई फ़र्क़ न पड़े तो आज यहीं पधारो और भोजन करो, मैं जानूँगी कि मेरी कुटिया को चार चाँद लग गए।''

सुंदर समुद्र ने विचार किया, फिर दिल में कहा कि तथागत ने कभी किसी को न नहीं कहा, एक मूर्ख ने उनके सामने भोजन के नाम मांस लाके रख दिया, उसपे भी ना नहीं कहा, मांस खा लिया। मुझे भी यही नीति अपनानी चाहिए, सो सुंदर समुद्र ने उस दिन उसी ड्योढ़ी में बैठ के भोजन किया। उस कंचनी ने दूसरे दिन भी यही इच्छा की और सुंदर समुद्र ने फिर उसकी इच्छा मान ली। बस सुंदर समुद्र रोज़ ही उस ड्योढ़ी में बैठ के भोजन करने लगा।

सुंदर समुद्र को अपनी ड्योढ़ी पर बुला लेने के बाद उस कंचनी ने गली के बालकों को बहलाया फुसलाया और सिखलाया कि जब भिक्षु जी ड्योढ़ी में बैठ के भोजन करें तो तुम गली में खूब दंगा करना और धूल मिट्टी उड़ाना। मैं दिखावे के लिए डाँटूँ-डपटूँगी, तुम बिल्कुल मत मानना। अगले दिन उन बालकों ने यही किया, कंचनी ने बालकों को डाँटा-डपटा मगर उन्होंने एक कान सुनी और दूसरे कान उड़ा दी। अगले दिन कंचनी सुंदर समुद्र के सामने हाथ बाँध के खड़ी हो गई, कहा कि ''प्रभु जी! गली के बालक बगटुट हैं, गर्द मिट्टी उड़ा के भोजन को ख़राब करते हैं। मैं विनती करती हूँ कि आप अंदर आकर पधारें और भोजन करें।'' सुंदर समुद्र ने फिर बुद्ध नीति को याद किया और कंचनी की बात चुपचाप मान ली। उस दिन से सुंदर समुद्र ड्योढ़ी से निकल अंदर दालान में बैठ के भोजन करने लगा।

वह भोजन करता और कंचनी उसकी सेवा करती, सेवा करते-करते छब दिखाती, क्या उस कंचनी की छब थी और क्या रूप था। सूरत सुर्ख़ सफ़ेद जैसे सेब-अनार, चुटिया नागिन जैसी, भंवें कमान सी, कमर पतली, कूल्हे भरे-भरे, सुंदर समुद्र जब उसकी ओर देखता तो उसका जी डूबने लगता।

तथागत ने अपने ज्ञान से जाना कि उनका एक भिक्षु किस गत में है। उन दिनों तथागत ने अपने पूरे संघ के संग श्रावस्ती के बाहर अनाथ हिंद के बाग़ में वास किया था। सब साथी उपदेश सुनने के लिए इकट्ठे हुए, तथागत एक घने आम तले बीरासन मार कर बैठे और आँखें मूँद लीं। कुछ देर बाद आँखें खोलीं, साथियों को देखा फिर उनकी ज्ञान भरी नज़रें सुंदर समुद्र पर आके ठहर गईं, टकटकी बाँध के उसे देखते रहे, फिर बोले, ''भिक्षु! तुम्हारा मन किस कारण उचाट है?''

सुंदर समुद्र ने सर झुका लिया और रुकते-रुकते बोला, ''हे तथागत, मोह के कारण।''

तथागत टकटकी बाँधे उसे देखा किए, फिर बोले, ''भिक्षु! मोह में दुख है, कामना आदमी की दुर्दशा करती है, कामी आदमी से वो बंदर भले जिन्होंने यह भेद जान कर गिरह में बाँधा और सुख पाया।'' भिक्षुओं ने पूछा, ''हे तथागत! वो भले बंदर कौन थे और कहाँ थे?''

''क्या तुमने भले बंदरों की कहानी नहीं सुनी?''— मैं सुनाता हुँ।

भले बंदरों की कहानी

अनेक बरस हुए मनुष्य जाति से दूर हिमालय की तलहटी में बंदरों की बिरादरी रहती थी, एक बार ऐसा हुआ कि कोई शिकारी उधर आ निकला। उसने एक बंदर को जतन करके पकड़ा और बनारस जाके राजा को दे दिया। उस बंदर ने राजा की ऐसी चाकरी की कि उसने प्रसन्न होके उसे आज़ाद कर दिया। वह बंदर लौट के अपने जंगल पहुँचा तो बिरादरी उसके गिर्द इकट्ठी हो गई, सब पूछने लगे कि ''बंधु, तू इतने दिनों कहाँ रहा?''

''बंधुओ! मैं मनुष्य जाति के बीच रहा।''

''मनुष्य जाति के बीच...? अच्छा...? फिर बता कि तूने उस जाति को कैसा पाया?''

''बंधुओ! ये मत पूछो।''

''हम तो पूछेंगे।''

''अच्छा यह बात है तो सुनो कि मनुष्य जाति में भी नर-मादा होते हैं जैसे हमारे बीच होते, पर उनमें नर की ठोड़ी पे लम्बे-लम्बे बाल होते हैं और मादा की छातियाँ बड़ी-बड़ी होती हैं, इतनी बड़ी कि थल-थल करती हैं। थल-थल वाली छातियों वाली ठोड़ी पे बाल को मोह में फँसाती है और दुख देती है।'' बंदरों ने कानों में उँगलियाँ दे लीं, चिल्लाए, ''बंधु, बस कर हमने बहुत सुन लिया।'' फिर वो उस टीले से यह कह के उठ गए कि हमने यहाँ बैठ के बुराई की बात सुनी है, अब यहाँ से उठ जाना चाहिए।

तथागत ये जातक सुना के चुप हुए, फिर बोले, ''भिक्षुओ! सुनाने वाला बंदर मैं था, सुनने वाले बंदर वो थे जो आज मेरे भिक्षु हैं।'' एक भिक्षु ने अचंभे से पूछा कि ''हे तथागत, नारी मर्द को कैसे दुख देती है जब कि मर्द

बलवान है और वह निर्बल है?'' तथागत मुस्काए, ''भोले भिक्षुओ! नारी निर्बल है तो क्या हुआ, अपनी चतुराई से बलवानों के बल निकाल देती है, क्या तुमने चतुर राजकुमारी की कहानी नहीं सुनी?''

''नहीं तथागत।''

''तो सुनो।''

चतुर राजकुमारी की कहानी

बीते समय की बात है कि बनारस में एक राजा था जिसने तक्षशिला जाकर विद्या प्राप्त की। बहुत विद्वान, बहुत बुद्धिमान, उसके एक पुत्री थी। यह सोच कर कि पुत्री ख़राब न हो जाए वह उसपर बहुत कड़ी नज़र रखता था, पर नारी को सात तालों में भी रखो तो वह ख़राब हो कर रहती है। राजा ने बहुत चौकसी की मगर राजकुमारी के नैन एक रसिया से लड़ गए। नैन तो लड़ गए पर मिलने की सूरत नहीं निकलती थी कि महल में चौकीदारों का पहरा बहुत था।

रसिया ने अपनी सेविका को अपना भेदी बनाया और महल में भेजा। सेविका महल में जा कर राजकुमारी की चाकर बन गई, साथ ही ताक में रही कि मौक़ा मिले तो राज कुमारी से भेद की बात की जाए। एक दिन की बात है कि वह बैठी राजकुमारी के सर में जुएं देख रही थी, जुओं को कुरेदते-कुरेदते उसने नाख़ुन से सर को खुजाया। राजकुमारी भी उड़ती चिड़िया को पकड़ती थी। भाँप लिया कि दाल में काला है, बोली, ''अरी मुँह से फूट कि उसने क्या कहा है।''

सेविका ने हौसला पकड़ा, कहा, ''पूछता है कैसे मिलूँ?'' बोली, ''ये कौन सी बड़ी बात है, सधा हुआ हाथी, काली घटा, नर्म कलाई।''

सेविका ने राजकुमारी का कहा रसिया को जा सुनाया। रसिया भी खेला खाया था, सब इशारे समझ गया। एक हाथी को सधाया, एक नर्म से लड़के को मिलाया, अब सावन के दिन आए और काली घटाएं घिर कर आईं तो रात पड़े हाथी पर बैठ, लड़के को साथ बिठा महल की दीवार तले जा पहुँचा। उधर राज कुमारी ने राजा से कहा कि महाराज कैसी सुंदर वर्षा हो रही है, मैं तो इस वर्षा में स्नान करूँगी। राजा ने बहुत बहलाया पर वह न मानी। स्नान के लिए मेंह में निकली और उस मुंडेर पे जा बैठी जिसके बराबर रसिया हाथी पर सवार बैठा था। राजा ने यहाँ भी चौकसी की, उसके पीछे-पीछे मेंह में गया, जब वह कपड़े उतारने लगी तो उसने मुँह फेर लिया पर राजकुमारी की कलाई को पकड़े रहा। राजकुमारी भी बला की बनी हुई थी, उसने अंगिया खोलने के बहाने कलाई राजा के हाथ से छुड़ाई, फिर घड़ी भर बाद लड़के की कलाई राजा के हाथ में पकड़ा दी और मुंडेर से कूद हाथी पर बैठ गई और फिर ये जा वो जा।

अँधेरे में राजा को कुछ पता न चला कि क्या हुआ, और फिर यूँ भी उसने मुँह फेर रखा था, बस उसी तरह मुँह फेरे कलाई पकड़े वापस हुआ। राजकुमारी की अटारी में उसे धकेल आगे सांकल लगा दी। जब सुबह हुई तब पता चला कि राजकुमारी तो रसिया के साथ भाग गई। राजा ने हार के कहा कि ''नारी की चौकसी कठिन काम है, कलाई पकड़ लो तो भी धोखा दे जाती है।'' तथागत जातक सुनाने के बाद चुप हुए फिर बोले, ''भिक्षु! जानते हो वह राजा कौन था, वह राजा मैं था कि पिछले जन्म में राजगद्दी पर बैठा था और एक मेरी पुत्री थी।'' चुप हुए, फिर ठंडा साँस भर के बोले, ''मैंने प्रकृति के भेद जाने पर नारी के भेद-भाव नहीं जान पाया।''

सुंदर समुद्र जैसे सोते से जाग उठा, नारी के चक्कर को जाना और उस चक्कर से निकलने की ठानी। मन में कहा कि आज मैं उस नारी से कह दूँगा कि कल से मेरी बाट न देखे। यह प्रतिज्ञा करके वह उस ड्योढ़ी पर पहुँचा, कंचनी ने रोज़ की तरह उसकी आव-भगत की और अंदर ले जाकर दालान में बिठाया, पर आज उसके सिखलाए हुए बालकों ने ड्योढ़ी के अंदर आके धमा चौकड़ी शुरू कर दी। उस वैश्या ने पहले तो बालकों को डाँटा फटकारा, फिर जब वह न माने तो सुंदर समुद्र से कहा कि ''भिक्षु जी! यहाँ ये बालक रोल मचाते हैं और तुम्हें सताते हैं, अच्छा हो कि ऊपर कोठे पे चल के भोजन करो।''

सुंदर समुद्र यह सुन कर पहले तो रुका, फिर सोचा कि लोग बालक समान हैं, इनकी इच्छा पूरी करनी चाहिए, यही बुद्ध नीति है और यूँ भी आज इस घर में मेरा आखिरी भोजन है। कल मैं कहाँ और ये घर कहाँ, बस ये सोच के वो उठ खड़ा हुआ। आगे-आगे कंचनी पीछे-पीछे वो सीढ़ियाँ चढ़ता चला गया। अपने पैरों पर नज़रें जमाए एक-एक सीढ़ी चढ़ रहा था। उसने कहाँ ये ध्यान दिया कि आगे कौन चल रहा है, मगर आगे जाने वाली कई बार रुक के खड़ी हो गई जैसे वह थक गई हो और हर बार सुंदर समुद्र बे ध्यानी में एक नर्म-नर्म साए के साथ छू गया।

सीढ़ियाँ चढ़ के कंचनी ने सुंदर समुद्र को एक सजी बनी अटरिया में ले जा के नर्म सेज पर बिठला दिया, फिर आप भी बराबर में ये कह के पसर गई कि सीढ़ियाँ चढ़ के मैं तो थक गई और ऐ मेरे बंधु! नारी के पास मर्द को फुसलाने के चालीस गुर हैं। वह कंचनी उन चालीस गुरों में पगी हुई थी। उसने पहले तो एक लंबी अंगड़ाई ली, अंगड़ाई लेते हुए बाहें ऊपर उठाईं फिर शर्मा के मुस्का के गिरा दीं फिर नाख़ुन से नाख़ुन खुरचने लगी, फिर दाँतों में साड़ी का पल्लू दबा के लजाई। बिना किसी कारण के ज़ोर से हँसी, फिर एक दम से हाथों में मुँह छुपा लिया, आप ज़ोर-ज़ोर से बोली, फिर ऐसे हौले-हौले बोली जैसे कानाफूसी कर रही हो, पहले दूर सिमट के बैठी, फिर वह बेसवा भिड़के बैठ गई।

और ऐ मेरे बंधुओ, सुंदर समुद्र तो बिल्कुल मोहित हो गया भूला कि वह भिक्षु है और वह तो पहले से ही गरमाई हुई थी, उसे गरमाता देख के खुल खेली। बेहया ने न अपने बदन पे कोई धज्जी रहने दी और न उसके तन पे कोई

लत्ता रहने दिया, सीना से सीना और रानों से रानों भिड़ने लगीं।

आनंद चुप हो गया, संजय तड़प के बोला, ''फिर क्या हुआ?''

''फिर क्या हुआ?'' आनंद हँसा, ''तथागत बीरासन बाँधे आँखें मूँदे बैठे थे, उन्हें खूब दिखाई दे रहा था कि बाग़ से दूर श्रावस्ती की उस ऊँची हवेली की अटरिया में नार एक भिक्षु के साथ छल-फ़रेब कर रही है। अमिताभ ने उस अटरिया में अपना दरस दिखाया। सुंदर समुद्र की बिसरी सुधि वापस आई, बस काम नदी में डूबते-डूबते बाहर निकल आया।'' आनंद कहानी सुना के चुप हो गया, उधर संजय विचारों में डूबा हुआ था, फिर ठंडा साँस भरा और कहा कि ''वो कैसा मंगल समय था कि तथागत हमारे बीच बिराजते थे, कोई अज्ञानी नारी के छल में आ जाता तो वो उसे ज्योति दिखाते और सत्य पथ पे ले आते।''

चुप हुआ फिर बोला, ''मुझे नारी के छल से कौन बचाएगा।'' आनंद बोला, ''हे संजय, मैं तुझसे वही कहता हूँ जो अमिताभ ने मुझसे कहा था कि आनंद, तू अब आप अपना दीप बनो।'' संजय ने यह सुन कर विचार किया फिर कहा कि मैं आप अपना दीप बनूँगा, सो दूसरे दिन जब वह भिक्षा पात्र ले के बस्ती की ओर चला तो प्रतिज्ञा की कि वह उस गली में नहीं जाएगा, पर जब वह बस्ती में दाख़िल हुआ तो उसने क्या देखा कि यह रास्ता उसी गली की ओर जा रहा है। जिस रस्ते पे चलता लगता कि वह रस्ता उसे उसी गली में उसी ड्योढ़ी पर लिए जा रहा है, वह ठिटक कर खड़ा हो गया, फैली हुई श्रावस्ती आज कितनी सिमट गई थी।

उस नगर की एक-एक गली उसकी खूंदी हुई थी, हर गली की हर ड्योढ़ी से वह भिक्षा ले चुका था, मगर आज जिस गली, जिस ड्योढ़ी का उसने ध्यान किया लगा कि वहाँ वह हाथ में थाल लिए उसकी बाट देखती है, उसने एक बार पूरे नगर को अपने ध्यान में लाया। फिर उसने अचंभा किया कि हर ड्योढ़ी में कोई न कोई नारी भिक्षा देने के लिए खड़ी है। यह सब माया का जाल है, फिर वह उन भले बंदरों को ध्यान में लाया जिन्होंने नारी की बात सुन के कानों में उँगलियाँ दे ली थीं और उस स्थान को छोड़ दिया था जहाँ उन्होंने यह बात सुनी थी। मुझे भी यह नगर छोड़ देना चाहिए और यह सोचकर वह नगर से मुँह मोड़ के जंगल की ओर हो लिया।

गलियाँ,ड्योढ़ियाँ, नारियाँ सब पीछे रह गई थीं। संजय अब घने जंगलों में चल रहा था, चलते-चलते उसने फूले हुए एक अशोक के पेड़ को देखा और रुक गया। उस पेड़ के नीचे उसने निर्जन वास किया। बसंत रुत थी, सरसों फूली हुई थी, गेंदा महक रहा था, अशोक की डालियाँ अपने ही बोझ से झुकी हुई थीं। संजय यह समां देख के बहुत प्रसन्न हुआ। अशोक को देर तक देखा किया, फिर वह अचंभे से मन ही मन में कहने लगा कि हे राम, किस कन्या ने इस अशोक को ठोकर मारी है कि वह इतना फूला है। बस इस विचार के साथ उसका ध्यान मेहंदी वाले उज्जवल कोमल पैरों की ओर चला गया। क्या इस अशोक को उन मेहंदी वाले उज्जवल कोमल पैरों ने ठोकर मारी है? वह सुंदरी बसंती साड़ी में लिपटी उसके ध्यान में उभरी, थोड़ी देर तक वह उस ध्यान में ऐसे डूबा रहा कि किसी बात की सुध-बुध ही न रही। मगर फिर अचानक वह चौंका। यह तो मैं फिर मोह के फँदे में फँस रहा हूँ, वह तुरंत वहाँ से उठ खड़ा हुआ, उस पेड़ तले बुराई की बात मेरे ध्यान में आई है, मुझे यहाँ से उठ जाना चाहिए।

संजय ने फिर एक लंबी यात्रा की और जंगल-जंगल मारा फिरा, दिन गुज़रे, महीने बीते, रुतें चढ़ीं और उतरीं, हर रात अपनी चहक महक के साथ आई और बीत गई, हर रुत संजय को दुखी करके गई, कभी फूलती सरसों, कभी बौराते आम, कभी डोलता, भुनभुनाता भौंरा, कभी मँडलाती भंभेरी, कभी दुखिया कोयल की पुकार, कभी उदास दादर की झंकार, कभी चम्पा की महक, कभी बेले की बास, तो यूँ कहो कि हर रात आती और यादों की शांत नदी में हिलकोरे पैदा कर जाती। हर बहाने बीता पल लौट के आ जाता और वह सुंदर मूरत सामने आ खड़ी होती। संजय सोच में पड़ गया कि यहाँ भी सब रस्ते उसी द्वार की ओर जाते हैं। बहुत विचार के बाद उसने यह तथ्य निकाला कि रुतें पँच इंद्री से मिली हुई हैं और पँच इंद्री दुख के पाँच दरवाज़े हैं। आदमी मोह में किस-किस राह से फँसता है कि कभी कोई कोमल पँखुड़ी छू के, कभी कोई रसीली वाणी सुन के, फिर कभी कोई महक उसे ले उड़ती है, कभी रंग उसे ले डूबता है, सो बात यूँ है कि हर रुत दुख देती है। यह जान कर वह उदास हुआ और दुखी होके कहा कि नगर में गलियाँ हैं और जंगल में रुतें हैं, मैं मोह के जाल से कैसे निकलूँ?

संजय इन्हीं विचारों में था कि पतझड़ आ गई, हवा के हर झोंके के साथ अनगिनत पत्ते टहनियों से गिरते और जहाँ-तहाँ तितर-बितर होजाते, अब यह रुत मुझसे क्या कहने आई है। संजय फिर सोच में पड़ गया। धीरे-धीरे फिर उसके अंदर कुन-मुन हुई। उसे फिर कुछ याद आने लगा था, पर अबकि बार याद और ही तरह की आई। यही रुत थी और ऐसा ही जंगल था, तथागत ने बीच पतझड़ यहाँ आके वास किया था। इर्दगिर्द पीले-पीले सूखे पत्ते बिखरे पड़े थे, हाथ बढ़ा के पत्तों से मुट्ठी भरी फिर आनंद को देखा, ''आनंद! क्या सब पत्ते मेरी मुट्ठी में आ गए हैं?''

आनंद झिझका फिर बोला, ''हे तथागत, यह रुत पतझड़ की है, पत्ते जंगल में इतने झड़े हैं कि उनकी गिनती नहीं हो सकती।'' तथागत ने कहा, ''आनंद! तूने सच कहा, पतझड़ के अनगिनत पत्तों में से मैं बस एक मुट्ठी उठा सका हूँ, यही गत सच्चाइयों की है, जितनी सच्चाइयाँ मेरी मुट्ठी में आईं, मैंने उनका प्रचार किया, पर सच्चाइयाँ अनगिनत हैं, पतझड़ के पत्तों के समान।''

इस याद ने उसपर निराला जादू किया कि वह जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया, फिर न एक क़दम आगे बढ़ा, न एक क़दम पीछे हटा, वहीं एक घने पीपल की छाँव में आसन मार के बैठ गया और गिरते ज़र्द सूखे पत्तों को तकने लगा। पतझड़ के अनगिनत पत्ते, अनगिनत सच्चाइयाँ, एक हैरानी के साथ वह गिरते पत्तों को देख रहा था, देखता रहा। धीरे-धीरे करके उसकी आँखें मुँदती चली गईं, जो बाहर है वही मेरे अंदर भी है। आसन मारे आँखें मूँदे बैठा रहा, बैठा रहा जाने कितने दिन, कितने युग, जब उसने आँखें खोलीं तो जाना कि अनगिनत रुतें बीत गई हैं और अब वह पतझड़ में है, उसकी ईर्द-गिर्द में ज़र्द सूखे पत्ते भरे थे, वह ज़र्द सूखे पत्तों में नहाया हुआ था और धूप में तप रहा था।

उसने नज़रें उठा के ऊपर देखा, जिस पीपल को घना देख के वह उसकी छाँव में बैठा था उस पीपल का एक-एक पत्ता झड़ चुका था, फिर उसने इर्द-गिर्द नज़र डाली और दूर तक धरती को ज़र्द पत्तों से ढका पाया। दूर तक पेड़ लुंड मुंड खड़े नज़र आ रहे थे। उसने अपने शांत मन में झाँका, मेरी कामनाएं भी ज़र्द सूखे पत्तों के समान झड़ चुकी हैं, फिर उसने कहा कि बसंत रुत, बरखा रुत, जाड़े की रुत, सब रुतें आनी-जानी हैं, फूल झड़ जाते हैं, बास उड़ जाती है, टहनियाँ सूख जाती हैं, पर पतझड़ अमर है। वह मुस्काया जैसे उसकी मुट्ठी भर गई हो, वह उठ खड़ा हुआ, अब वह शांत था, मन में कहा कि मेरी यात्रा सिद्ध हुई, अब मुझे वापस चलना चाहिए।

संजय जंगल में ख़ाली पात्र व्याकुल मन के साथ गया था, जंगल से भरी मुट्ठी और शांत हृदय के संग लौटा। जंगल से निकल आया था, अब वह भरी बस्ती में था। श्रावस्ती में इस समय कैसी चहक महक थी, लगता था कि नगर नहीं फूला-फूला बाग़ है, रंग और सुगंध की नदी उमड़ी हुई थी, चहकते पँछी, महकती क्यारियाँ, सुंदर नारियाँ, रंग-रंग की उनकी साड़ियाँ, गलियों में वे आ जा रहीं थीं। उसने एक बैराग के साथ यह सब कुछ देखा, एक बात जी में आई कि बस्ती के बीच खड़ा हो के चेतावनी दे कि हे अज्ञानियो, हे श्रावस्ती के वासियो! रंग-रस में मत डूबो, फूल कुम्हला जाते हैं, बू-बास उड़ जाती है, रंग-रूप उतर जाता है, जोबन ढल जाता है, सुंदरता की सब रुतें आनी-जानी हैं, पतझड़ अमर रुत है, पर मन में तो बैराग रच गया था, बोलने को अब जी कब चाहता था, गुम-सुम आँखें झुकाए श्रावस्ती की गलियों से गुज़रा। आँख उठा के यह भी न देखा कि किस गली में और किस द्वारे भिक्षा माँगते हो, क्यों देखें, मतलब तो भिक्षा से है, बैरागी को इससे क्या कि किस द्वार से मिला है और किन हाथों से मिला है।

झुकी नज़रों से बस देने वाली के पैरों को देखा और हैरान रह गया, बिल्कुल वैसे ही गोरे मेहंदी लगे पैर, क्या ये वह है, चौंक के नज़र उठाई, क्या देखा कि वही खड़ी है, बिल्कुल उसी गत में बसंती साड़ी, माथे पे लाल बिंदी, हाथ में भोजन से भरी थाल, उठी नज़रें उठी रह गईं, क़दम जहाँ थे वहीं जम गए। न कोई क़दम पीछे न कोई क़दम आगे, एक पल में कई युग बीत गए, लगा कि जन्म-जन्म से वह इस ड्योढ़ी पर उसी गत से खड़ी है और जन्म-जन्म से वह उसी तरह ठिठका हुआ उसे तक रहा है।

मन इसका फिर व्याकुल था और आत्मा फिर दुखी थी, रुत फिर बदलने लगी थी, लुंड मुंड पेड़ों में कोंपलें फूट रही थीं। उसने एक दुविधा के साथ अपने अंदर झाँका, क्या मेरे भीतर भी फिर कोई कोंपल फूट पड़ी है और उसने अचंभे के साथ सोचा कि अपने दीप के उजाले में चलते-चलते मैं कहाँ आ गया हूँ और यह कैसे पत्ते हैं जो मेरी मुट्ठी में आ गए हैं। ❐

एफ़ 23/6 सी, द्वितीय तल, शताब्दी एन्क्लेव,
बरोला, सेक्टर 49, नोएडा 201301
मो.+919820811320, +919899630697
Email: khursheed_anam@yahoo.co.in

गपशप

❐ वीना विभोर

जाड़ों की लम्बी सर्द रातें,
और, गर्म चाय की चुस्की ,
दिन छिपते ही,रात शुरू, शाम नदारद।
मैं और तुम, यही एक पल,
न आने वाले कल की चिन्ता
न बीते हुए कल को दोहराना,
गपशप, चाय की चुस्की के साथ।

गुड़ तिल के लड्डू, रेवड़ी,
मूंगफली खाते हुए,
छिलके का ढेर लगाने की होड़।
टी.वी. पर कॉमेडी फिल्म
नरम-गरम,चुपके-चुपके,
देखते हुए दिल खोलकर हँसना।
जाड़ों की लम्बी सर्द रातें,
टमाटर के सूप की बहार,
बढ़िया अमरूद, गाजर-मूली का
सलाद खाने का मजा।
आलू, गोभी, मूली, मैथी, बथुऐ के
हर दिन मक्खन के साथ गर्म पराठे ,
गाजर का हलवा, और भी लाजवाब।
मैं और तुम और ये बेसिर पैर की बातें,
ये जीने का अंदाज,
हंसने से बेहतर कोई इलाज कहाँ!
उम्र बढ़ने से मुस्कुराहट नहीं रुकती,
मुस्कुराहट रूकने से
उम्र जरूर बढ़ जाती है।
जाड़ों की लम्बी सर्द रात,
चाय की चुस्की के साथ। ❐

मो. 781265-8789987

मुहावरों से अनोखा न्याय

□ स्नेहलता दीक्षित (अमेरिका)

पात्र–1 महाराज।

पात्र 2 – प्रधान मंत्री

पात्र 3 – मंत्री

पात्र 4 – मंत्री

पात्र 5 – मंत्री

पात्र 6 –पेशकार

पात्र 7– पंखा झलने वाला

पात्र 8– पंखा झलने वाला

पात्र 9 – फ़रियादी नं एक भैसवाला

पात्र 10 – फ़रियादी नं. दो–चोर

पात्र 11 – फ़रियादी नं. तीन –धोबी

पात्र 12 – फ़रियादी नं. चार–मुर्गी वाली

पात्र 13 – फ़रियादी नं. पांच– सेठ

पात्र 14 – फ़रियादी को लाने वाला

पात्र 15 – फ़रियादी को हटाने वाला।

(महाराज का दरवार लगने वाला है। सभी दरबारी अपने अपने स्थान पर बैठे हुए हैं। इतने में ही नेपथ्य से आवाज़ आती है – बाSSSSअदब, बाSSSSSमुलाहिजा होशियार महाराजाधिराज

पधार रहे हैSSSSS।

सब दरबारी खड़े हो जाते हैं और महाराजा की जय बोलते हैं। महाराज कुछ नशे में हैं,वह धीरे–धीरे सिंहासन की ओर बढ़ते हैं, उन्हें दो सेवक सहारा दे कर सिंहासन पर बैठाते हैं वह बड़ी अकड़ के साथ सिंहासन पर बैठ जाते हैं। (सभी सभासद व अन्य भी अपने अपने स्थान पर बैठ जाते हैं)

महाराज –(नशे में)मंत्री जी SSSS

प्रधानमंत्री – (खड़े हो कर) जी महाराज

महाराज – आज की कार्यवाही शुरू की जाय।

प्रधानमंत्री–जी हुज़ूर, अभी शुरू करता हूँ, परंतु महाराज कुछ फ़रियादी अपनी फ़रियाद लेकर आए है, पहले उन्हें निपटा लिया जाय?

महाराज –(सोते से जाग कर) हाँ... हाँ.. यही सही होगा।

प्रधानमंत्री–(पेशकार की ओर मुड़कर) फ़रियादी पेश किये जाएँ।

पेशकार – जी हुज़ूर अभी पेश करता हूँ (झुक कर महाराज की कोर्निश बजाता हुआ बाये दरवाज़े से बाहर चला जाता है,जल्दी ही अपने साथ गरीब से दिखने वाले दो आदमियों को अपने साथ ले कर आता है)

फ़रियादी नं. 1–(भैंस वाला) – महाराज दुहाई हो, दुहाई हो महाराज, मेरी भैंस इस आदमी ने छीन ली (हाथ से साथ आये व्यक्ति की ओर इशारा करता है और ज़ोर ज़ोर से विलाप करता है)

महाराज–(नशे की हालत में ऊँघता हुए बोलते हैं) हूँऽऽऽऽ तो तुम्हारी भैंस छीन ली इस व्यक्ति ने?

भैंसवाला – हुजूरआपने दुरुस्त फ़रमाया, इसी ने मेरी भैंस छीनी है (साथ वाले व्यक्ति की ओर इशारा करता है)

महाराज – कैसे छीनी इसने तुम्हारी भैंस?

भैंस वाला – हुज़ूर इसके हाथ में एक मोटी लाठी थी, जब शाम को मैं अपनी भैंस को तालाब से पानी पिलाकर घर ला रहा था तो इसने अचानक पीछे से आकर मुझे लाठी दिखाई और भैंस छीन कर ले गया,महाराज मैं लुट गया, मुझे मेरी भैंस दिलवाई जाये (विलाप करता है)

महाराज – तो इसके हाथ में लाठी थी?

भैंसवाला – जी हुज़ूर बहुत मोटी लाठी थी

महाराज – मंत्री जी इसके हाथ में लाठी थी और इसने भैंस छीन ली?

मंत्री जी – जी हुज़ूर, यह ऐसा ही कह रहा है?

महाराज–तो मंत्री जी,इस मामले में हमारा फ़ैसला है कि जिसके हाथ में लाठी थी, भैंस उसी को दी जाय।

भैंसवाला – (विलाप करता हुवा) ऐसा अनर्थ मत कीजिए हुज़ूर, मैं गरीब आदमी मारा जाऊँगा।

महाराज –क्यों क्या हुआ?, तुम्हें मालूम नहीं कि ''**जिसकी लाठी उसकी भैंस**'' (मंत्री की तरफ़ देख कर) मंत्रीजी ! अगला फ़रियादी पेश किया जाय।

मंत्री – पेशकार जी, इस व्यक्ति को बाहर ले जायें और अगला फ़रियादी पेश किया जाय।

पेशकार – (झुककर) बहुत अच्छा हुजूर (विलाप करते भैंसवाले को बाहर ले जाता और दूसरे फ़रियादी को लकर आता है।)

फ़रियादी दो –दुहाई हो महाराज, मेरा सारा सामान चोरी चला गया, मैं लुट गया महाराज चोरों को पकड़ कर उन्हें कड़ी से कड़ी सजा जी जाय (विलाप करता है)

महाराज – मंत्रीजी क्या चोर पकड़े गये हैं?

मंत्री – जी हुज़ूर चोरों को पकड़ लिया गया है।

महाराज – चोर पेश किये जाय।

मंत्री – पेशकार जी, चोर को पेश किया जाय।

पेशकार –जी हुज़ूर अभी पेश करता हूँ।

(पर्दे के पीछे जाता है और अपने साथ एक व्यक्ति को लेकर आता है)

चोर – महाराज दुहाई हो, मैंने कुछ नहीं किया, न कुछ चुराया है, मुझे वैसे ही पकड़ लिया गया? महाराज मुझे बचाइये हुज़ूर (रोता है)

महाराज— मंत्री जी ज़रा इस आदमी की दाढ़ी टटोलिये, इसमें कहीं कोई तिनका है क्या?

मंत्री – (आश्चर्य से) दाढ़ी में तिनका हुज़ूर?

महाराज- मंत्री जी ज़रा जल्दी कीजिए

मंत्री - (चोर की दाढ़ी टटोलते हुये) हुज़ूर इसकी दाढ़ी में कुछ नहीं है।

महाराज -फ़रियादी

फरियादी - जी हुज़ूर

महाराज - इस मामले में हमारा फ़ैसला है कि इस चोर ने चोरी नहीं की है, क्योंकि **चोर की दाढ़ी में तो तिनका होता है** और वह है नहीं।

फ़रियादी- यह तो अन्याय हो गया महाराज, मैं तो लुट जाऊँगा महाराज न्याय कीजिए।

(चोर दर्शकों की ओर देख कर अकड़ कर चलता है, और फरियादी विलाप करता है)

महाराज - मंत्री अगला फ़रियादी पेश किया जाय।

मंजी - पेशकार अगला फरियादी पेश किया जाय।

(पेशकार चोर और व्यक्ति को खींच कर नेपथ्य में ले जाता है और अगले फ़रियादी धोबी को लेकर आता है)

धोबी - (विलाप करते हुये) दुहाई हो महाराज दुहाई, मेरा गधा खो गया है महाराज, कृपया उसे ढुड़वाया जाय। (रोता है)

महाराज - (ऊँघते हुये) तुम कौन हो?

धोबी -हैंस्ऽऽऽऽऽम...मैं... मैं आपका धोबी महाराज।

महाराज - क्या हुआ तुम्हारे साथ?

धोबी - महाराज, रात को अपना गधा घर के बाहर बाँध कर सोया था, सुबह उठा तो मेरा गधा नदारद, महाराज मेरा गधा ढुड़वाया जाय।

महाराज - फरियादी

धोबी-जी हुज़ूर

महाराज - हम तो तुम्हारे कुत्ते के बारे में जानते हैं, गधे बारे में नहीं।

धोबी-(आश्चर्य से)कुत्ता..... अरे हुज़ूर मेरा गधा खोया है जो ढेंचू ढेंचू करता है वह वाला गधा महाराज

महाराज-मंत्री इसे कह दिया जाय कि गधे का मामला हमारे न्याय के अंतर्गत आता ही नहीं, (धोबी की तरफ़ मुड़ कर) फरियादी जब तुम्हारा कुत्ता खो जाय तब न्याय के लिए आना, तुम्हें मालूम नहीं कि **''धोबी का कुत्ता घर का न घाट का''।**

सभी सभासद-वाह वाह क्या न्याय है, तभी तो आपके न्याय का डंका चारों ओर बज रहा है वाह महाराज ! आपकी जय हो।

महाराज - (मुस्कुराते हुए) मंत्री अगला फ़रियादी पेश किया जाय।

(पेशकार धोबी को पकड़ कर खींचते हुये नैपथ्य में ले जाता है और एक स्त्री को लेकर आता है, वह बहुत गरीब व फटे कपड़े पहने हुये है।)

स्त्री- (विलाप करती हुई) दुहाई हो महाराज, मैं लुट गयी, महाराज! मेरी मुर्गियाँ दाना चुगने पड़ोसी के आँगन में चली गयी,पड़ोसी ने उन्हें बंद करके रख लिया, महाराज मुझे मेरी मुर्गियाँ वापस दिलवायी जाय।

महाराज -तुम्हारी अपनी मुर्गियाँ थी?

स्त्री-जी हुज़ूर।

महाराज - कितनी मुर्गियाँ थी तुम्हारी?

स्त्री-पूरी दस थी महाराज। रोज़ अंडा देती थीं जिन्हें बेच कर मैं अपने परिवार का पालन करती हूँ। मुझे मेरी मुर्गियाँ वापस दिलाई जाये महाराज, बड़ी कृपा होगी।

महाराज-मंत्री जी इस स्त्री को दाल के दस दाने दे दिये जाय।

मंजी - दाल के दाने महाराज?

स्त्री- (विलाप करती हुई) यह क्या महाराज मुर्गियों के बदले दाल के दाने?

महाराज - क्यों क्या तुम्हें पता नहीं कि **घर की मुर्गी दाल बराबर** मंत्री जी अगला फरियादी पेश किया जाय।

(पेशकार स्त्री को खींच कर नैपथ्य में ले जाता है। वह ज़ोर ज़ोर से रो रही है, पेशकार अगला फरियादी लेकर आता है)

सेठ - महाराज की जय हो, महाराज मैं बर्बाद हो गया, तबाह हो गया महाराज

महाराज -तुम्हारा क्या मामला है सेठ जी?

सेठ -महाराज मेरे साथ बड़ा धोखा हुआ है, मेरे साथी ने मुझे धोखा दिया महाराज, धोखा। महाराज -धोखा?

सेठ जी- हुज़ूर धोखा। महाराज मैं व्यापार के सिलिसले में बाहर गया हुआ था, जब मैं वापस लौटा तो देखा कि सारा व्यापार चौपट हो गया महाराज। व्यापार की हालत देख कर मेरे हाथों के तोते उड़ गये और मैं ठगा सा देखता रह गया, यह सब मेरे साथी ने ही किया है महाराज, उसे सख़्त से सख़्त सजा दें।

महाराज-(खुमारी से जाग कर) हूँऽऽऽऽ तो तुम्हारे तोते उड़ गये।

सेठ-जी महाराज, मेरे साथ न्याय किया जाय।

महाराज- सेठ जी! इसमें क़सूर तो आपका ही है कि तुमने अपने तोते पिंजरे में बंद करके क्यों नहीं रखे,जो उड़ गये? (मंत्री जी की तरफ़ मुड़ कर) मंत्री जी इनके तोते ढूँढ कर दिलवाये जाये।

सेठ-अरे ये क्या महाराज? मेरा तो व्यापार चौपट हुआ है व्यापार, वह भी मेरे साथी के द्वारा, मैं उन तोतों की बात नहीं कर रहा जो आप समझ रहें हैं।

महाराज -घबराओ नहीं सेठ जी ! आपके तोते अवश्य ढूँड़ कर आपको दिये जायेंगे। (मंत्री जी ओर मुँह करके) मंत्री जी इन्हें भेज दिया जाय (सिंहासन से उतर कर कुछ कदम आगे बढ़ता है, मंत्री जी व सभी सभासद खड़े हो जाते हैं और बोलते है)

सभी -धन्य हो महाराज आप व धन्य आपका न्याय, ऐसा अनोखा न्याय वाह वाह, महाराज की जय हो।

महाराज - मंत्री जी

मंत्रीजी - जी हुज़ूर

महाराज - अब हम बहुत थक गये हैं, आराम करना चाहते हैं, बाक़ी की कार्यवाही कल की जायेगी

मंत्री जी - जो आज्ञा महाराज।

(धीरे धीरे महाराज नेपथ्य में चले जाते हैं मंत्री व अन्य सभा सद भी नेपथ्य में चले जाते हैं और मंच का पर्दा गिर जाता है) ❐

कहानी

मुन्नू

▫ शीला राय शर्मा

एक छोटा सा गाँव था, जैसा कि हर छोटा गाँव होता है। उस गाँव के बाहर की तरफ एक झोपड़ीनुमा घर था जैसा कि हर झोपड़ीनुमा घर होता है। उस झोपड़ीनुमा घर के पास एक सरकारी प्राइमरी स्कूल था, जैसा कि हर सरकारी प्राइमरी स्कूल होता है। उस सरकारी प्राइमरी स्कूल में रोज सुबह एक ही प्रार्थना गाई जाती थी, ''हे प्रभु! आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिए।'' अब आनन्ददाता प्रभु ज्ञान कितना देते थे, यह तो पता नहीं, पर आनन्द जरूर देते थे क्योंकि दिन भर वहाँ जितनी धमाचौकड़ी, उछल- कूद और हो-हल्ला मचा रहता था, वह सब बिना आनन्द के सम्भव नहीं था।

उस झोपड़ीनुमा घर में तीन प्राणी रहते थे एक बुढ़िया, एक लड़का और एक कुत्ता। इनमें से पहले दोनों प्राणियों का कोई नाम नहीं था, हाँ, तीसरे का था मुन्नू। बुढ़िया का कुछ नाम तो रहा होगा लेकिन मायका छूटा तो नाम भी वहीं छूट गया। यहाँ किसी को उसका नाम मालूम तक नहीं था। पहले सब उसे हरखू की बहू बुलाते थे, बाद में बुढ़िया कहने लगे। और अब तक तो शायद बुढ़िया भी अपना नाम भूल चुकी होगी। लड़के का भी नाम माँ-बाप ने कुछ रखा तो जरूर होगा लेकिन माँ-बाप गए तो नाम भी उनके साथ ही चला गया। बुढ़िया उसे छोरा बुलाती थी और फिर सब उसे छोरा ही कहने लगे। एक तो छोरा बुलाना आसान था, दूसरे बिना माँ-बाप के एक आवारा से छोकरे का नाम रखने की जहमत भला कौन उठाता और क्यों उठाता?

घर, बुढ़िया का था। उसका पति, कभी इसी प्राइमरी स्कूल का चपरासी था। वह तो कब का गुजर गया लेकिन सरकारी मुलाजिम था, इसलिए अदना सी ही सही, पेंशन का हकदार था। उसी अदना सी पेंशन का एक छोटा सा हिस्सा बुढ़िया को उसकी पत्नी होने के नाते मिलता था - जो इतना पर्याप्त नहीं था कि वह ठीक से जी सके, लेकिन इतना अपर्याप्त भी नहीं था कि ठीक से मर ही सके, इसलिए अंतिम सांस लेने तक बुढ़िया जीने को बाध्य थी, जैसा कि इस असार संसार के अधिकांश प्राणी होते हैं।

बाद में भूला-भटका, बिन माँ-बाप का एक अनाथ लड़का उधर आ निकला। माँ-बाप नहीं थे इसलिए कुछ चोरी-चकारी, कुछ तिकड़म कर के जीना सीख गया था। उस पर तरस खाकर बुढ़िया, कभी-कभी रात का बचा-खुचा कुछ खाने को दे देती थी। जाड़े में उसे कांपता देख, एक पुरानी फटी चादर भी दे दी, जो वह दिन भर लपेटे घूमता रहता। खाना पाने की लालच में अक्सर वह बुढ़िया की झोपड़ी की तरफ आ निकलता और फिर मानव - सानिध्य के लिए तरसते बुढ़िया के मन की कमजोरी का फायदा उठाकर उसके घर में जगह बना ली।

वैसे, बुढ़िया ने कह रखा था कि केवल जाड़े भर ही उसे घर में रहने देगी लेकिन जैसे भी हो, वह उस घर का स्थायी निवासी बन गया। बुढ़िया सफाई पसंद थी, लड़का नहीं था, पर कभी बुढ़िया के डर से, कभी गरमी के मारे नहा भी लेता था। उसकी कमीज फटी ही सही पर अब साफ रहने लगी।

अब बुढ़िया लड़के की गार्जियन थी इसलिए गार्जियाना तौर पर उसे कुछ-कुछ नसीहतें भी देती रहती, जैसे इधर-उधर मारे-मारे फिरना ठीक नहीं है, उसे कुछ करना चाहिए। वैसे क्या करना चाहिए, यह बता पाना उसके बूते की बात नहीं थी। ''नहा-धोकर थोड़ा आदमी की तरह रहा कर'' भगवान ने तो उसे आदमी की तरह रखने का जिम्मा कब का छोड़ दिया था! बुढ़िया कभी-कभी चोरी-चकारी न करने की सलाह भी दे देती लेकिन लड़का जब कभी कच्चे आम, कभी एकाध लौकी या करेले ले आता, तो कभी पूछती नहीं थी कि कहाँ से लाया। और न ही नाराज होती थी, लेकिन एक दिन जब कहीं से कुत्ते का एक बच्चा उठा लाया तो बुढ़िया बहुत नाराज हुई।

''छीं-छीं, इसे एकदम उठा और वहीं फेंक कर आ, जहाँ से ले आया है।''

जाहिर है, लड़के ने ऐसा नहीं किया और फिर कुत्ते की निरीह आँखों और अपनापन जताती हिलती पूँछने बुढ़िया को थोड़ा अपनी तरफ कर लिया।

''देख तो, कैसे टुकुर-टुकुर ताक रहा है? जा देख, रात की कोई रोटी हो तो लाकर दे दे।''

लड़के के दुलार और बासी रोटी की लालच में कुत्ता आस-पास ही मंडराता रहता। जाड़े में उसे कूँ-कूँ करते, कांपते देख, बुढ़िया ने कोठरी के एक कोने में बोरा बिछाने की इजाजत दे दी। और इस तरह, कुत्ते को भी उस घर की नागरिकता प्राप्त हो गई।

अपना चाहे न हो, लड़के ने कुत्ते का नाम जरूर रख दिया - मुन्नू। बुढ़िया बहुत हैरान हुई। ''मुन्नू? यह कैसा नाम है? मुन्नू भला कहीं कुत्ते का नाम होता है?''

इसका प्रतिवाद न तो लड़के ने किया न कुत्ते ने, लेकिन नाम मुन्नू रह गया। इस तरह उस घर में पहले एक, फिर दो और फिर तीन प्राणी रहने लगे। तीन बिल्कुल ही असम्बद्ध प्राणी, जिन्होंने केवल अपने लिए ही जीना सीखा था, कब एक-दूसरे के लिए जीने लगे यह पता ही नहीं चला। कब कुत्ते के हिस्से की रोटियाँ बनने लगीं और कब कुत्ता अनजान लोगों को अपने घर के आस-पास देखकर भौंकने लगा, लड़का कब से बुढ़िया को अम्मा कहने लगा और बुढ़िया उसे छोटू, किसी को याद नहीं। और, जब तीनों प्राणियों को नाम

मिल गया तो जीवों के रजिस्टर में उनके नामों की रजिस्ट्री हो गई और उनका अस्तित्व भी प्रमाणित हो गया। उनका जीवन भी अब वैसे ही चलने लगा जैसा कि इस चराचर जगत में अन्य सभी जीवों का चलता है।

घोर अभावों के बावजूद भी अगर राहत नाम की कोई चीज होती है, तो वह उस घर में आ गई। लेकिन पास के सरकारी प्राइमरी स्कूल में हो-हल्ला कुछ ज्यादा ही होने लगा। बच्चों की संख्या भी बढ़ गई और झगड़े भी। असल में, सरकारी स्कूलों में मध्यान्ह भोजन की योजना शुरू हुई थी और जब पेट का सवाल हो तो शोर-गुल, झगड़ा-झंझट सब जायज है।

जब बुढ़िया को दोपहर के खाने की बात पता चली तो उसे लगा कि लड़के को भी स्कूल जाना चाहिए। स्कूल जाने से और कोई लाभ हो सकता है इसका न तो उसे पता था, न उम्मीद, लेकिन जो कुछ भी मुफ्त मिल रहा हो, उसे न छोड़ने की सहज मानवीय कमजोरी से वह भी परे नहीं थी। पर खाना मिलने के लोभ के बावजूद भी लड़के को स्कूल जाने का जरा भी मन नहीं था। आखिर कौन सा आजाद पंछी अपने मन से पिंजड़े में जाना चाहेगा? पर बुढ़िया को उस पिंजड़े में मिलने वाले दाने की लालच थी। उसने बहुत तरह से लड़के को समझाने की कोशिश की।

''स्कूल में न तो फीस देनी है और न ही कोई और खर्चा। ऊपर से दो जोड़ी कपड़े भी मिलेंगे और खाना भी। और भला क्या चाहिए?''

''जब भगवान ने दो हाथ-पैर दिए ही हैं तो स्कूल जाने में भला क्या दिक्कत है?''

पर अब बुढ़िया को कौन समझाता कि स्कूल जाने के लिए केवल दो हाथ-पांवों से ही काम नहीं चलता, स्कूल जाने का मन भी होना चाहिए, जो लड़के का बिल्कुल नहीं था।

खैर, नई चप्पल की लालच और बुढ़िया की डांट-डपट के डर से लड़का कभी-कभी स्कूल जाने लगा। फिर धीरे-धीरे इसकी आदत पड़ गई और रोज जाने लगा। स्कूल जाने पर कुछ दोस्त भी बन गए, जैसा कि स्कूल जाने पर होता है। और दोस्तों में भी जिससे सबसे दाँत कटी यारी हुई, वह था बिरजू बिसेसर साह का इकलौता बेटा।

गरीबी रेखा के नीचे स्थापित उस गाँव में, बिसेसर साह की गिनती अच्छे खासे धनाढ्यों में हो सकती थी। गाँव की एकमात्र दुकान उन्हीं की थी, जिसमें किराना से लेकर कपड़े और मामूली जरूरत के हर छोटे-बड़े सामान मिल जाते थे। गाँव की आर्थिक विपन्नता के बावजूद भी फसल कटने, शादी-ब्याह और त्योहारों के मौसम में दुकान अच्छा-खासा चलती थी और ऐसे भी चलती ही थी। ऊपर से बिसेसर साह सूद पर कर्जा देकर गाहे-बगाहे जरूरतमंदों की मदद भी करते रहते थे। भगवान का दिया सब कुछ था उनके पास। पक्का मकान, सीधी-सादी पत्नी, वंश - बेल बढ़ाने वाला बेटा, दुधारू गाय और एक नौकर भी राम खेलावन। कह कर तो उसे रखा गया था रात को दुकान की चौकीदारी करने के लिए लेकिन धीरे-धीरे हाट-बाजार करना, गाय दूहना और बिरजू को स्कूल लाने- ले जाने का काम भी उसके सुपुर्द हो गया।

राम खेलावन जब नया-नया जवान हुआ था तो उसे पहलवानी करने का शौक चर्राया था। थोड़ी वर्जिश- उर्जिश भी की। पर पहलवानों वाली खुराक न जुट पाने से पहलवानी तो चली गई लेकिन मूँछें रह गईं। उन्हीं नोकदार मूँछों पर ताव देकर अपनी अकड़ बनाए रखने की कोशिश करता और अकड़ बनाए रखने मूँछों की मदद करने को एक मोटी लाठी भी साथ रखता। उसी लाठी को ठक-ठक करता चलता तो गली में उसकी उपस्थिति और दिलों पर उसका रोब दोनों ही दर्ज होते रहते।

तो फिर इतना सब होते हुए भी बिसेसर का बेटा गाँव के सरकारी प्राइमरी स्कूल में क्यों पढ़ रहा था? इसके पीछे कारण बस यही था कि बेटा इकलौता था और छोटा था। वैसे भी इकलौते बेटे जल्दी बड़े नहीं होते। तो जब तक बड़ा नहीं हो जाता, गाँव के स्कूल में पढ़ ले।

बच्चे जात-पात भले ही नहीं जानते हों लेकिन गरीब और अमीर का जो विश्वव्यापी जाति भेद है, उसे वे भी बखूबी पहचानते हैं। इसलिए बिसेसर साह के बेटे को स्कूल में एक विशिष्ट दर्जा प्राप्त था।

इस मामले में लड़के की जात तो बिल्कुल अलग थी पर उसे भी एक विशिष्ट दर्जा हासिल हो गया क्योंकि वह मुन्नू का मालिक था। कभी-कभी मुन्नू भी उसके साथ लगा स्कूल पँहुच जाता था। कुत्ते तो बच्चों को ऐसे ही अच्छे लगते हैं लेकिन मुन्नू कुछ ज्यादा ही लोकप्रिय हो गया। लड़के ने उसे कई करतब सिखा रखे थे - जैसे रोटी के उछाले टुकड़े को हवा में ही उछल कर लपक लेना, दो पांवों पर चलकर दिखाना, एक पंजा उठाकर सलाम करना आदि। तो इसीलिए लड़का भी विशिष्ट दर्जे का हकदार हो गया और फिर दोनों विशिष्ट दर्जाधारियों में दोस्ती होना लाजमी था, तो दोस्ती हो गई।

दोस्ती यारी तो अपनी जगह ठीक है लेकिन यारों में कभी-कभी ठन भी जाती है, सो एक दिन स्कूल से लौटते समय बेबात की बात पर लड़के और बिरजू में ठन गई। मुन्नू भी साथ में था और लाठी सहित राम खेलावन भी।

जब झगड़ा शुरू हुआ तो इसे दोस्तों की लपक झपक समझ कर मुन्नू पूँछ हिलाता खड़ा रहा। जब तू- तू, मैं-मैं बढ़ी और आवाजें तेज हो गईं तो उसकी पूँछ हिलनी बंद हो गई और कान खड़े हुए। पर जब बिरजू ने मरियल से लड़के को पटक कर मारना शुरू कर दिया तब उसने लपक कर बिरजू की पिंडली ने दाँत गड़ा दिए।

राम खेलावन को भी शुरू में वही गलतफहमी हुई जो कुत्ते को हुई थी। पहले वह भी दोस्तों की छोटी- मोटी बहस समझ कर ध्यान नहीं दे रहा था। जब बात बढ़ी और उठा-पटक पर आ गई तो उसे दंगल का मजा आने लगा। वह कभी बिरजू और कभी लड़के को ललकारने लगा। वो तो जब कुत्ता काट बैठा और बिरजू दर्द से बिलबिला उठा तब उसकी स्वामीभक्ति ने जोर मारा और उसने कुत्ते पर तड़ाक से अपनी लाठी दे मारी। मुन्नू कांय-

कांय करता लोट गया। फिर सब कुछ थम गया। झगड़ा तो तुरंत खत्म हो गया लेकिन एक दूसरा ही हंगामा शुरू हो गया। आस-पास के काफी लोग जुट आए, बहुत हाय-तौबा मची। कुछ कुत्ते को कोस रहे थे, कुछ लड़के को। राम खेलावन का भी कुछ दोष हो सकता है, ऐसा किसी ने नहीं सोचा। खबर मिलते ही छाती पीटते बिसेसर साह भी आ पहुचे। उन्हें पूरा शक था कि उनके बेटे को जान से मारने की साजिश की गई थी, वह तो भगवान ने बचा लिया। शहर जाकर अब चौदह सूइयाँ लेनी पड़ेंगी। अगर उनके बेटे को कुछ भी हो गया तो वे किसी को जिंदा नहीं छोड़ेंगे। वहाँ जुटी भीड़ ने भी सिर हिला हिला कर उनकी हाँ में हाँ मिलाई। कुत्ते और लड़के की बहुत मौखिक मलामत हुई। और होती भी क्यों नहीं भीड़ में से अधिकतर पर बिसेसर साह का उधार बाकी था। इसलिए बिसेसर साह के जाते ही भीड़ भी छंट गई और तब बुढ़िया और लड़के को मुन्नू सुध आई। बुढ़िया के पुचकारने पर मुन्नू की पूँछ में थोड़ी सी हरकत हुई, और फिर कुछ नहीं हुआ। इस तरह मुन्नू का कुत्ता की मौत मर गया आखिर कुत्ता ही तो था।

लेकिन मरने के बाद उसे जो सम्मान मिला वह दूसरे कुत्तों के नसीब में नहीं होता। बुढ़िया और लड़के ने खुरपी से, जितना हो सका गड्ढा खोदा और मुन्नू को बड़े जतन से उसमें रखा। मिट्टी भरने के पहले लड़के ने उसके लिए बनी रोटियाँ भी डाल दीं। दूर का सफर है, कहीं रास्ते में भूख लगे।

गड्ढा भरने के बाद लड़का बहुत रोया, बुढ़िया नहीं रोई। वैसे रो लेती तो शायद अच्छा ही होता। खुश हो-हो कर दुःख भुलाने की यातना से बच जाती।

''दिन भर में छः-सात तो रोटियाँ ही खा लेता था। इतनी महंगाई में तो अपना ही पेट पालना मुश्किल है। अच्छा हुआ चला गया।''

''उसके चक्कर में तू दिनभर मारा-मारा फिरता था। अच्छा ही हुआ तेरी जान छूटी। ''

''याद है न? कैसे एक बार मरा हुआ कौआ घर में उठा लाया था? छी-छी:...''

''कैसे मेरी एक चप्पल कहीं छोड़ आया था और नई लेनी पड़ी थी? अच्छा हुआ सारी झंझटें खत्म हो गईं।''

''खबरदार जो फिर कभी कोई कुत्ता - बिल्ली घर ले आया। ''

लड़का क्या कहता? उदास चुप्पी साध लेता। धीरे-धीरे बुढ़िया का कोसना कम हो गया और लड़के का रोना भी। दोनों, मुन्नू के बिना जीना सीख गए, जैसा कि हमेशा होता है। जिन्दगी किसी के जाने से नहीं रुकती, यह तो महज एक कुत्ता था, लेकिन कोठरी के कोने में बिछा बोरा किसी ने नहीं हटाया। एक दिन लड़का बड़ा चोर सा मुँह बनाए घर आया।

''क्या हुआ? ऐसा मुँह क्यों बना रखा है? फिर किताब खोकर आ गया है क्या रे?''

''नहीं।''

''मास्टरजी ने मारा क्या?''

''नहीं।''

''किसी से झगड़ा हुआ है?''

इस बार लड़के ने केवल सिर हिलाया।

''तो फिर क्या हुआ?''

''अम्मा

स्कूल के पास की पुलिया के नीचे

एक कुतिया है ... और उसके तीन पिल्ले भी। ''

''तो?''

'' उनमें से एक ले आऊँ?''

बुढ़िया कुछ कहती उसके पहले ही लड़का थप्पड़ खाने के डर से दो कदम पीछे हट गया।

''जा, ले आ

''तो क्या कहती हो? जाऊँ?''

लड़के को समझ नहीं आया कि अचानक बुढ़िया रुआँसी होकर इतना बिफर क्यों पड़ी।

''अब भागता है कि नहीं यहाँ से?'' ❐

125, कोआपरेटिव कॉलोनी,
बोकारो स्टील सिटी-827001 (झारखण्ड)
मो. 9162719056

दो ग़ज़लें

❐ अनुराग मिश्र ''ग़ैर

1

ग़म का कौन ठिकाना है,
घर मेरे ही आना है।

कुछ न लिखो दीवारों पर,
बारिश में धुल जाना है।

फूलों को मालूम नहीं है,
कल उनको मुरझाना है।

मंदिर वाले रस्ते पर,
एक बड़ा मयखाना है

सूत सभी हैं उलझे से,
कैसा ताना-बाना है।

ग़ैर तुझे उस बस्ती में,
किस-किस ने पहचाना है।

2

आँगन में इक धूप का टुकड़ा,
सुनता बूढ़ी माँ का दुखड़ा

बिटवा याद बहुत आता है,
दुलराती जब गइया बछड़ा।

रूखी सूखी रोटी मयस्सर,
देह पे चकती वाला कपड़ा।

नम करता बूढ़ी पलकों को,
राजू-पप्पू का ये झगड़ा।

बिसराया जब -जब अपनों ने,
ग़ैर ने आकर दामन पकड़ा। ❐

10- स्वप्नलोक कॉलोनी, कमता, चिनहट
लखनऊ-226028, उत्तर प्रदेश,
मो-8840094221
email - anuraggair@gmail.com

अनकहे को कहने का माध्यम : कहानी

□ डॉ. तारा दूगड़

''लाखों विद्रोहों के बावजूद भारत सचमुच अद्भुत है। उसका इतिहास ,उसका समाज, उसका जीवन, कितनी बाधाओं और कितनी नकारात्मकताओं के बावजूद आज भी संभावनाओं से भरा पूरा है।''वी .एस नायपॉल के इन शब्दों की सच्चाई को बनाए रखने में 'कहानियों' का बहुत बड़ा हाथ है । कहानी शब्द आधुनिक हिन्दी भाषा के तीव्र विकास युग के प्रथम चरण की देन है। संस्कृत युग में कहानी शब्द की कल्पना भी नहीं की गई थी तब कथा शब्द ही प्रचलन में था जो 'कथ' धातु से बना था। संस्कृत में कथा के अन्य पर्याय जैसे आख्यान, आख्यायिका, गल्प आदि हिंदी में अपनी जगह नहीं बना सके। संस्कृत के बाद की प्राकृत भाषाओं के युग में कह,क़ध , कत्थ फिर हिन्दी में कहना से संभवत: कहानी शब्द का जन्म हुआ।

कहानियां मानव सभ्यता के साथ चलने वाली वह कला है जो मानव को अतीत से वर्तमान तक जोड़ने का कार्य करती है। कहानी साहित्य की वह विधा है जिसके साथ नानी दादियों की यादें जुड़ी हुई हैं। संध्या के समय खाने खेलने के बाद नन्हें मुन्ने बच्चों की एक उपनिषद् उनकी नानी या दादी के पास हुआ करती थी। रोते मचलते बच्चे कहानी सुनते सुनते दिन भर की थकान उतारते पढ़ाई के श्रम को दूर करते नए संस्कार पाते और निश्चिंत होकर सो जाया करते थे। मैथिलीशरण गुप्त जी की पंक्तियाँ हैं जिसमें बालक माँ से कहानी सुनाने का भाव भरा आग्रह कर रहा है--

''माँ कह एक कहानी,
समझ लिया क्या तूने मुझको
बेटा, अपनी नानी!!
कहती है मुझको यह चेटी,
तू मेरी नानी की बेटी,
कह माँ कह ,लेटी ही लेटी
राजा था या रानी
माँ कह एक कहानी।''

यह उस ज़माने की बात है जब रेडियो नहीं था , टेलिविज़न नहीं था , सिनेमाघर नहीं था और विडियो भी नहीं था। उस समय ज़िंदगी का बोझ हल्का करने के लिए घर घर में मनोरंजक कहानियों के दौर चलते थे, जिनमें बच्चे ही नहीं बड़े बूढ़े भी शामिल होते थे। शीन काफ निज़ाम ने भी इस संदर्भ में बहुत बढ़िया लिखा है--

''कहानी कोई अनकही भेज दे
अँधेरा हुआ रोशनी भेज दे
उदासी अकेले में डर जाएगी
घड़ी दो घड़ी को ख़ुशी भेज दे''

वे कहानियाँ मन को तो रंजित करती ही थीं साथ में ऐसी सीख भी दे जाती थीं जिनका जीवन निर्माण में बहुत बड़ा योगदान होता था। मन के मंदिर में धूप दानी की तरह सुलगती हुई वे प्रेरक कहानियां मन और प्राणों को अपनी महक में डुबो जाती थी। शाम ढलते ही घर के बग़ीचे में बिखरती हुई रात रानी की सुगंध के साथ बच्चों में कहानी सुनने की ललक पैदा हो जाती थी किन्तु आज के संकुल शहरी वातावरण में है ना इतने खुले घर ना बगीचे,ना रात रानी की ख़ुशबू और न ही नानी दादी की मनभावन कहानियाँ। हाँ, यदि किसी नानी दादी के पास समय है भी तो बच्चों के पास अपने स्कूल, होम वर्क, टी.वी. और मोबाइल से फ़ुरसत कहाँ? इस व्यस्तता ने स्वस्थ मनोरंजन को तो छीना ही है, साथ ही छीना है वीरता, भक्ति, क्षमा, दया, परोपकार और सद्भावना जैसे संस्कारों को।

एक कहानी चाहे ऐतिहासिक हो, पौराणिक हो, काल्पनिक हो या वर्तमान की सच्ची घटना पर आधारित हो, उसमें कुछ ऐसी मिठास होती है जो प्राय: हर मन को मोह लेती है। कहानी सुनने में जितनी सुखद होती है समझने में उतनी ही सरल भी होती है। बहुत सोचने समझने पर भी जो बात समझ में नहीं आती , कहानी पलक झपकते ही उसे समझा देती है और हमें नया बोध पाठ दे जाती है। कहानी छोटी हो या बड़ी, उसके कहने और लिखने का ढंग जितना मार्मिक और प्रभावी होता है वह उतनी ही अधिक हृदयस्पर्शी बन जाती है।

कहानी सबके बारे में कहती है पर अपने बारे में कुछ नहीं कहती। कितना अच्छा और सच्चा कह पाती हैं कहानियां, इसी में उसकी सार्थकता है। किसी भी समाज की अंदरूनी ख़बर पाने का एक ज़रिया कहानियां भी हुआ करती थीं। हमारे देश की प्राचीन कहानियों में ज्ञान और अनुभव के विशाल कोश छिपे हुए हैं। रामायण, महाभारत, उपनिषद से लेकर लोकगाथाओं तक कहानियों का विस्तार है। कहानियाँ अपने समय से जूझती हैं। उनमें युगानुरूप व्यक्ति की मानसिकता और घटनाओं की अभिव्यंजना होती है। कथा साहित्य सिर्फ कलात्मक संरचना ही नहीं, वह सामाजिक संरचना भी होती है। संवेदना साहित्य का मूल स्रोत है पर वह भी निरपेक्ष नहीं होती। कथाकार अनुभव और विचार से संवेदना को जन्म देता है दिशा देता है। अनुभव और संवेदना के जरिये वह किसी भी समस्या पर लिख सकता है।

कविता की बजाय कथा लेखन श्रम साध्य होता है। कहानी का अपना एक फ्रेम वर्क होता

है जिसे हम तत्व कहते हैं जैसे कथानक, पात्र एवं चरित्र चित्रण, कथोपकथन, देश काल या वातावरण, भाषाशैली एवम् उद्देश्य इन सांचों में ढली कहानी आदर्श कहानी कहलाती है। आज कल कहानी लिखने के तरीक़ों में भी परिवर्तन आया है। फ़ास्ट फ़ूड या आधुनिक तर्ज़ पर अलग अलग अंदाज़ में अलग अलग प्रतीकों में लिखी जाने लगी हैं कहानियाँ।

- ये सर्वमान्य हो गया है कि साहित्य जीवन के लिए है। जीवन की जटिलता और गंभीरता को विश्लेषित करने का एक रास्ता है कहानियाँ। कहानी स्वयं में जीवन नहीं अपितु जीवन का अनुसृजन होती हैं।
- हमारे यहाँ कथा की मौखिक परंपरा रही है। भगवान शिव को पहला कथक कहा जाता है। कथक अर्थात् कथा कहने वाला। वृहदारण्यक में इसी आशय से कथक शब्द का प्रयोग हुआ है। विष्णु चंद शर्मा की पुस्तक पंचतंत्र की कथाएं, जातक कथाएँ आदि कथा के प्रारंभिक रूप ही हैं।
- मानव के अस्तित्व में आने से प्रारंभ हुआ कहानियों का युग न बीता है और न ही बीत सकता है क्योंकि कहानियाँ हमेशा सदा बहार फूल की तरह महकती रहती हैं, अल्हड़ पहाड़ी नदी की तरह बहती रहती हैं और लोक संस्कृति को उजागर करती हुई जन जन में नई उमंग, नई प्रेरणा का संचार करती हैं। कहानी रोते हुए को हँसा देती है। आज भी नन्हे मुन्नों की माताएँ यदि अपने समय का नियोजन कर उन्हें मोबाइल पकड़ाने की बजाय अच्छी अच्छी कहानियां सुनाएं तो बच्चे अवश्य सुनेंगे और उसी के अनुसार उनका विकास भी होगा।

कहानी वह जो नींद से जगा दे। सफल और सार्थक कहानी लेखन की कसौटी यही है कि जो दोपहर की फ़ुरसत में नींद दिलाने के लिए नहीं, नींद से जगाने के लिए लिखी जाए, कुछ सोचने पर मजबूर करे और हमारे मन में उतर जाए।

इसमें संदेह नहीं कि कोई भी कला व्यक्ति को कुंठा, निराशा, हताशा और अकेलेपन की खाई से हाथ पकड़कर बाहर निकालने में सहायक होती हैं। बहुत सी कहानियां कहानीकार के लिए स्वयं संजीवनी का काम करती हैं। अनकही को कहने का मधुर माध्यम कहानी ही तो है। आज भी समाज में बहुत से ऐसे हैं जो सहते हैं किंतु कहते नहीं। बस, इसी अनकहे को कहने में कहानी बनती जाती है। संचार के आधुनिक साधन, व्यक्तित्व निर्माण के नए तरीक़े, मोटिवेशनल स्पीकर आदि तो हाल ही में प्रचलन में आए हैं। हज़ारों हज़ार सालों से लोगों का मानस कहानियां ही तो गढ़ता रहा हं। फ़ेसबुक, इंस्टाग्राम आदि विभिन्न संचार माध्यमों के युग में भी कहानियों का प्रभाव कम नहीं पड़ा है। बस आवश्यकता है इस दिशा में उत्सुकता जगाने और फिर निरंतरता बनाए रखने की। अंत में नंदलाल पाठक की पंक्तियाँ-

''वो कहानी जो हँसना सिखादे
पेट की भूख को जो भुला दे
जिसमें सच की भरी चाँदनी हो
जिसमें उम्मीद की रोशनी हो
जिसमें ना हो कहानी पुरानी
माँ सुनाओ मुझे वो कहानी॥'' ❐

4ए, नीलकण्ठ, 26बी,
कैमक स्ट्रीट कोलकाता-700016
draradygar@gmail.com

झरने बेकरार हैं

❐ दीपक वोहरा

झरने बेकरार हैं
नदियों से मिलने के लिए

अल्हड़ चंचल नदियाँ
बेसाख्ता बेताब हैं
समंदर के प्यार में
डूब जाने के लिए

फूल तलबगार हैं
अपनी खुशबू बाँटने के लिए

तितलियाँ बेचैन हैं
फूलों पर रंग बिखेरने के लिए

हवाएँ घोल रही हैं मिठास
गरम मौसम में
बादल बरसकर बुझा
देते हैं धरती की प्यास

पेड़
आकाश को छूने की कोशिश में
कभी-कभी खुद को भूल जाते हैं
लहरें
एक-दूसरे में समा जाती हैं
मानो मिलना ही उनका धर्म हो
फूल
अगर साथ न खिलें
तो अधूरे रह जाते हैं
धूप
धरती की बाँहों में उतरती है
और चाँदनी
हर रात समंदर को चूम लेती है

तो बताओ
ये कौन लोग हैं
जो घोल रहे हैं ज़हर फिजाओं में
जो रहना चाहते हैं — अकेले ❐

मो. 8950672635

व्यंग्य-रचना

आओ विकास करें

▫ पूरन सरमा

हमारे देश को विकास की बीमारी आजादी के बाद से ही लग गई थी। जो भी सत्ता में आया उसने विकास का नारा दिया। आप विकास चाहें या न चाहें परन्तु सरकार ने कहा कि विकास तो कराना ही होगा। विकास नहीं होगा तो सरकार के कार्यक्रम और योजनाओं का क्या होगा? सो विकास की मारामारी ऐसी चली कि विकास चल निकला। हम विकासशील हो गये। कोई क्षेत्र इस छूत से अछूता नहीं रहा, विकास हुआ भी तो ऐसा कि चारों दिशाओं में इसकी रोशनी फैल गई।

यही विकास एक दिन मेरे गाँव भी आ गया। नये चंद सिरफिरों को पसन्द भी आ गया। उन्हें लगा कि विकास की यह प्रक्रिया अपनाई जा सकती है इसलिए वे भी विकासशील हो गये। इसे अपनाने वाले वे लोग थे जो बेकार थे, जिनके हाथ खाली थे। उन्होंने विकास को आजीविका के रूप में अपना लिया। वह विकास ही किस काम का जिसे अपनाने से सर्व प्रथम स्वयं का कल्याण न हो। बस दनादन पुख्ता मकानों की नींव धरी जाने लगी। अकाल अलग हो गया-इसलिए नेताजी ने जो राहत भेजी उसका खून गाँव के विकासशीलों को पृथक् से मुँह लग गया। इस तरह वे आबाद हो गये। गाँव के विकास के लिये 'नवयुवक मण्डल' नाम से एक संस्था का गठन किया गया। जो चंद लोग शहर में विकास की चकाचौंध देख आये थे-वे तमाम उसके सदस्य थे।

मण्डल की पहली बैठक हुई तो उसके एजेंण्डा में-मेरा नाम स्थानान्तरित कराये जाने वाले लोगों में शामिल था। मैं घबरा गया कि यह नवयुवक मण्डल का गठन क्या मेरे लिए ही किया गया है। दौड़ कर मैं विकासशीलों के अध्यक्ष से मिला और बोला-''अमां यार तुम हमारे गाँव के हो और हमारा ही तबादला करवा रहे हो। गाँव में पड़े हैं। अपने बच्चों का लालन-पालन कर रहे हैं, यदि तबादला हो गया तो सारा घर अव्यवस्थित हो जायेगा।''

अध्यक्ष जी तो विकास की लहर के शिकार थे सो बोले-''गाँव के विकास के लिए आपका इस गाँव से स्थानान्तरण अत्यावश्यक है। मण्डल की बैठक में भी यह प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हो गया है, इसलिए अब कुछ नहीं किया जा सकता।''

''लेकिन मैं विकास में आड़े कहाँ आ रहा हूँ और मैंने बिगाड़ा क्या है?'' मैंने पूछा।

वे बोले-''विकास में तुम ही तो सबसे बड़ी बाधा हो। दरअसल आपने ईमानदारी का प्रमाण-पत्र ले रखा है और हमें ईमानदारों से डर लगता है। स्कूल में जो निर्माण कार्य चल रहा है, उसका सारा हिसाब-किताब आपके पास है।''

''आप पूरी ईमानदारी से उसे निपटाते हैं। तीन वर्ष से कोई घपले के चांसेज नहीं मिल रहे हैं। ऐसे में आपके खिलाफ चार्जेज लगाकर तबादला करवाने के अलावा हमारे पास और क्या विकल्प रह जाता है?''

''लेकिन इसमें मैं बाधा कहाँ उत्पन्न कर रहा हूँ। यदि मैं हिसाब-किताब सही रखता हूँ तो इसमें विकास को बल ही मिलेगा। पूरा पैसा विकास में लगेगा।'' मैंने कहा।

''इसका मतलब आप विकास का अर्थ ही नहीं जानते।''

''मैं तो विकास का अर्थ यही जानता हूँ कि जन-कल्याण अधिक-से-अधिक ही तथा लोगों को सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ मिले।'' मैंने कहा।

इस पर वे दाँत पीस कर बोले-''तो फिर आप अपने इस गाँव से बोरिया-बिस्तर बाँध लीजिये।''

मैं समझ ही नहीं पाया कि आखिर मेरा तबादला क्यों करवाया जा रहा है? उन्होंने मेरी शिकायत मेरे विभाग में गाँव के लोगों के जाली हस्ताक्षर करवाकर भेजी। वे शिष्ट मण्डल भी बनाकर गये। परन्तु शायद विभाग गाँव का विकास नहीं चाहता था, इसलिये तीन वर्ष तक के अथक परिश्रम के बाद भी मेरा स्थानान्तरण नहीं करवा पाये। एक दिन अध्यक्ष जी से फिर सामना हो गया, मैंने कहा-''मैं स्कूल की निर्माण समिति छोड़ रहा हूँ, आप चाहें तो वह काम संभाल लें?''

वे बोले-''आप व्यंग्य करते हैं?''

मैंने कहा-''आपको लगता है। मैं अब विकास और आपके बीच ज्यादा दिन नहीं रहना चाहता, वैसे भी निर्माण कार्य लगभग पूरा हो चुका है। नये सिरे से यदि कोई कार्य चलवाना हो तो आप संभाल लीजिये।''

''नये सिरे से काम मैं शुरू करूँ? जिस समय गंगा बह रही थी-आपने हाथ नहीं धोने दिये। जब गंगा सूख गई तो क्या धूल उड़ाऊँ?'' वे बहुत दुःखी थे।

''आप तो विकासशील हैं, विकास की बीमारी से त्रस्त हैं, कुछ तो करना ही है।''

वे बोले-''आप ऐसा मत सोचिये कि आपके ट्रांसफर की कार्यवाही बंद कर दी गई है। इस बार तो आपका तबादला होकर रहेगा।''

''यदि मेरे तबादले से आपका विकास गाँव में पाँव जमा सके तो अब मैं तबादले के लिए भी तैयार हूँ।'' मैंने कहा।

उन्होंने कहा-''घबराइये नहीं, कल एक और शिष्ट मण्डल आपकी शिकायत लेकर राजधानी जायेगा। मन्त्री जी को वोट लेना होगा तो उन्हें हमारी बात माननी होगी। आपने निर्माण

समिति में घपला किया है। विरोधियों से मिले हुये हैं। गाँव में राजनीति करते हैं आप?''

''ज्यादा मत गिनाइये मेरे तबादले के लिए ये ही आधार पर्याप्त हैं। अकाल राहत की जो दूसरी खेप आ रही है, उसमें सरपंच के साथ आपको भी लगवा दूँ?'' मैंने पूछा।

परन्तु वे तो बिदक पड़े-''क्या तुम मुझे भ्रष्ट समझते हो? जन सेवा के लिए मैंने घर की चिंता नहीं की कभी। आप मुझे फुसलाना चाहते हैं?''

''नहीं-तो आप पधारिये और जाकर अपने मण्डल की आपातकालिक बैठक बुलाकर मेरे तबादले की पुरजोर सिफारिश करवाइये।''

वे पाँव पीटते हुये चले गये। यह किस्सा हुये पच्चीस वर्ष बीत गये। मैं सेवानिवृत्त भी हो गया। लेकिन मेरा तबादला नहीं करवा पाये। जहाँ तक विकास का प्रश्न है-विकास जहाँ का तहाँ है। वे भी जहाँ के तहाँ हैं। बस यही इधर-उधर की कर लेते हैं। झूठी गवाही दे आते हैं और बिना बुलाये लोगों को सलाह मशविरा देते हैं। इधर-उधर से ऋण मारकर काम चलाते हैं। मैंने एक बार कहा कि आप गाँव के विकास का व्रत नहीं लेते तो शायद आपका विकास हो जाता-परन्तु वे कहते हैं कि ''परहित सरिस धरम नहीं भाई'' परहित के लिए वे खुद बरबाद हो गये। गाँव भले पूरा आबाद है-परन्तु वे परेशान हैं। विकास की छूत अभी गई नहीं। गाँव के विकास के लिए कोई बैठक अथवा आयोजन हो और उन्हें नहीं बुलाया जाये तो वे नाराज हो जाते हैं। इसलिए गाँव के लोग इसमें भूल नहीं करते। उन्हें पता है कि वे सच्चे जनसेवक हैं। उन्होंने घर फूँक कर तमाशा देखा हैं। परन्तु पता नहीं जितना वे विकास के नजदीक जाते हैं, विकास उनसे दूर क्यों भागता है? विकास की तमाम नीतियाँ उनके पास हैं-परन्तु विकास को न जाने क्या हुआ है। ❐

124/61-62, अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-302 020, (राजस्थान); फोन: 9828024500

व्यंग्य-रचना

आओ, गजानन आओ

❐ रामस्वरूप दीक्षित

आओ गजानन महाराज, हमारे घर आओ, पर देखो पड़ोसी के घर मत जाना। और उस दुष्ट 'क' के यहाँ तो बिल्कुल नहीं। बहुत नुकसान किया उसने मेरा। पिछली साल का पुरस्कार मुझे उसी के कारण नहीं मिल पाया था। एक कारण ये भी हो सकता है कि पिछली बार मैंने आपको बुलाया भी नहीं था। सो स्वाभाविक है कि आप मेरे विघ्न क्यों हरते। आपको इसलिए नहीं बुला रहा कि आप में मेरी आस्था है । आस्था तो मेरी बस लक्ष्मी जी में ही है। पर उनके मेरे घर आने में बहुत से विघ्न आ जाते हैं। पढ़ा , सुना है कि आप विघ्नविनाशक हैं। आप जिसके पास पहुंच जाते हैं उसके जीवन से सारे विघ्नों का समूल नाश कर देते हैं। इसी कारण बुला रहे आपको। आइए और एक-एककर सारे विघ्नों को समाप्त कर दीजिए।

दफ्तर में बड़ा बाबू बहुत परेशान करता है। प्रकाशक रॉयल्टी देने में आनाकानी कर रहे है। एक किताब दो साल से पड़ी है प्रकाशक के पास। न छाप रहा न लौटा रहा। बेटा बेरोजगार है। बहिन की शादी सेट हो गई थी , पर एन वक्त पर लड़के के मामा ने मना कर दिया कि घर उनकी हैसियत का नहीं।

आजकल पानी की किल्लत बनी हुई है।मंहगाई के मारे कमर टूटी जा रही है । जनता बदहाल है और सरकार मस्ती में झूम रही है। महिलाएं न घर में सुरक्षित न बाहर।चुनी हुई सरकारें गिराकर लोकतंत्र का गला घोंटा जा रहा है। बलात्कारियों के सम्मान में जुलूस निकाले जा रहे हैं। न जाने कितने कितने विघ्न और कितनी-कितनी बाधाएं लोगों के सामने मुँह बाए खड़ी हैं। आप आओ तो कुछ तो समाधान हो। आप देख ही रहे हो कि हम लोगों ने अन्याय का विरोध करना छोड़ दिया है।

आप देखना आपके पांडालों में रोज लाखों लोग आरती उतारेंगे, मगर इनसे अगर कहा जाये कि यह आरती उतारने का नहीं एकजुट होकर आंदोलन करने का वक्त है तो ये आस्था का सवाल उठाकर दिए में घी डालने लगते हैं। जितने लोग ''गणपति बप्पा मोरया'' के नारे लगाते हैं , उनमें से आधे भी अगर ''इन्कलाब ज़िंदाबाद'' बोलने लगे तो शायद आपको आने की जरूरत ही न पड़े। पर यह सम्भव नहीं दीख रहा। इसलिये आपका आना जरूरी है।

जब आदमी अपना भरोसा खो देता है तो देवताओं में उस भरोसे को तलाशने लगता है। आप तो आप हम तो आपके वाहन चूहे तक को मना रहे कि वह आपको लेकर जल्दी से आ जाये। बड़े लोगों के अर्दली भी इज्जत के हकदार होते हैं। सुना है आपके पास अनेक गण हैं, जो आपके एक इशारे पर सब कुछ तहस नहस कर देते हैं। आपकी यही ताकत आपको पूज्य बनाती है। हम शक्ति के पुजारी लोग हैं। हमारी आस्था देवता से ज्यादा उसकी शक्ति में होती है। शक्तिशाली मनुष्य को हम अपनी सामूहिक स्तुतियों से देवता बना डालते हैं। तो आओ गजानन जी, आपके आने के लिए ये सबसे सही वक्त है।

पर आपकी दिक्कत ये है कि आपको वे भी बुला रहे है जिनके संहार के लिए हम आपको बुला रहे है। आप भी विकट असमंजस में हैं । जाएं तो जाएं कहाँ? सोच लीजिये, परख लीजिये कि आपकी जरूरत किसको ज्यादा है? मेरी समझ से आपको वहाँ तो कतई नहीं जाना चाहिए जो आपके नाम से हर साल करोड़ों का व्यापार कर रहे हैं या आपके नाम से वोटों के इंतजाम में लगे हुए हैं। उन घरों में जाओ गजानन , जिनमें दो वक्त की रोटी का इंतजाम न होने के बाद भी मिट्टी की आपकी मूर्ति के सामने आपके भजन गाये जा रहे हैं। ❐

घुमक्कडी दुशाले की अभिलाषा

❐ सुषमा व्यास राजनिधि

वह अचानक रिटायरमेंट पार्टी में दिखाई दे गई। पहले भी उसे देख चुकी थी, एक कवि के कविता संग्रह के विमोचन में। बड़ी ही खूबसूरत थी, इसलिए याद रह गई थी। गुलाबी कलर की हल्के लाल ,नीले, पीले फूलों से सजी हुई। कुछ अलग ही आभा लिए हुए थी। अचानक आकर डॉ व्यास जी के गले में झुल गई। हमारे पतिदेव प्रोफेसर व्यास जी की रिटायरमेंट पार्टी थी और वह गुलाबी रंग की दुशाला उन्हें ओढाई गई थी। वही क्यों और भी अन्य शालें व्यास जी के कांधे पर सजी हुई थी। मैंने अचानक उसे देखकर पूछ ही लिया-''अरे तुम तो यहां भी आ गई।''

वह भी मुस्कुरा उठी-''मैं याद हूं आपको ?'' ''हां हां क्यों नहीं इतनी खूबसूरत जो हो।'' कलर कितना खिल रहा है तुम्हारा और तुम ही क्यों यह जो भूरी, सुनहरी, लाल, पीली मटमैली, नीली, कॉफी कलर की, क्रीम कलर की आकर इनके कांधे पर सम्मानित है, इनमें से कुछेक भी मुझे याद है परंतु तुम बहुत स्पेशल हो ना इसलिए पक्के से याद रह गई तुम तो, अपनी प्रशंसा सुनकर वह और भी गुलाबी हो गई। कहने लगी-''क्या करें हमारी तो जिंदगी ही ऐसी है । एक जगह टिक ही नहीं पाती है हम, बंजारों जैसी जिंदगी है हमारी। अनवरत यात्राएं करती रहती हैं हम। पूछो यह भूरी, मिट्टी रंग की, सुनहरे रंग की, कॉफी रंग की, कश्मीरी, उत्तराखंडी, पंजाबी, नेपाली, हिमाचली, गढ़वाली सभी है हम सभी दुशालें हैं, घुमक्कड़ी दुशालें। बस इधर से उधर उधर से इधर । हमारी स्थिति भी दिवाली पर दी जाने वाली मिठाई सोहन- पापड़ी जैसी है ,जिसकी कोई कीमत नहीं है। जिसका कोई वजूद नहीं है। जिसे कोई खाता नहीं है, उसका डिब्बा एक घर से दूसरे घर जाता रहता है। हम भी वैसे ही हैं, हमें भी कोई बरतता नहीं है ओढता नहीं है, हमें भी एक से दूसरे को पकड़ा दिया जाता है । सभी शालों ने उसकी हां में हां मिलाई।

भूरी बोली-''क्या बताएं भाभी जी, मैं तो इतना ज्यादा घूम चुकी हूं कि अब थक ही गई हूं ,पता नहीं हमारे देश के यह नेता कैसे वोट के लिए जिंदगी भर घूमते रहते हैं, भाषण देते रहते हैं, कभी थकते ही नहीं क्या यह लोग। इनकी उर्जा प्रेरणादायी है।''एक तो मेरा रंग भी डार्क है और हर कार्यक्रम में मुझे ले जाकर सम्मान के बतौर ओढा दिया जाता है, जैसे मेरा तो कोई मान सम्मान है ही नहीं।'' क्रीम कलर वाली बोल पड़ी ''मैं ज्यादा तो नहीं घूमी क्योंकि मेरा कलर बहुत लाइट है, जल्दी मैली हो जाती हूं ना इसीलिए। बहुत संभाल कर पन्नी में रखकर मुझे इधर से उधर कर दिया जाता है। अब थोड़ी-थोड़ी मटमैली हो रही हूं, तो किसी दिन किसी घर में ही शरण पा जाऊंगी। किसी बड़े, बूढ़े को ओढा दी जाऊंगी या फिर दया करके किसी गरीब इंसान को दे दी जाऊंगी। यह संतोष तो रहेगा कि चलो कोई घर तो मिला मुझे। अब आराम से यहाँ रहकर उपयोग में तो ले ली जाऊंगी। हर कोई चाहता है ना कि उसे फालतू ना समझा जाए बल्कि उसको कार्य में लिया जाए। उसे निकम्मा ना समझे। हमने तो सुना है कि इंसान बडा स्वार्थी होता है जो चीज उसके काम की नहीं होती, उसे कचरा समझ लेता है।

यह सुनकर किसी फिल्मी हीरोइन-सी सुंदर वह गुलाबी शाल तो उदास ही हो गई। बोली ''भाभी जी, मैं तो अनवरत यात्रा करती रहती हूं। कभी किसी कवि के घर में जगह मिलती है,,जहां अलमारी में सहेज कर रख दी जाती हूं , तो और कहीं भी कभी के सम्मान के लिए ओढ़ा दी जाती हूं। कभी किसी ऑफिसर के घर जहां तो मुझे देखा भी नहीं जाता वैसी की वैसी घड़ी की घड़ी ही दूसरी जगह पहुंचा दी जाती हूं । एक बार तो मैं एक नेता जी को ओढा दी गई ,मुझे तो बड़ा डर लगा की कहीं इन नेताजी जैसी मेरी भी फितरत दोगली ना हो जाए परंतु नेताजी ने मुझे तुरंत ही अलग कर दिया और फिर मैं उनके ऑफिस में शालों के ढेर में पटक दी गई। क्या बताऊं इतनी शालें बेचारी ऐसे ही धूल में लोथा रही थी। वहाँ हम सब एक दूसरे के ऊपर ऐसी पडी जा रही थी जैसे मुम्बई के लोकल ट्रेन में आम आदमी कुचला जाता है, ''जैसे किसी विशेष दिन आस्था और विश्वास के कारण भीड़ में कुचल दिया जाता है, जैसे किसी प्रकृति के कोप से उठे कहर से पूरा गांव दब जाता है। बस ऐसे ही हम भी दबे कुचले पड़े थे। सबको यही प्रतीक्षा थी कि इस धूल, दम घोंटू वातावरण और हल्ले गुल्ले से कब बाहर जाएंगी। कब हमारा भी रेस्क्यू ऑपरेशन होगा ?'' सही कह रही हो मैने भी सहमति में सर हिलाया, सभी शालें एक साथ बोल पड़ी।

''हां हां सही है हम किसी कवि, ऑफिसर, अभिनेत्री, अभिनेता, नेता के घर नहीं जाना चाहती, कृपया हम आपसे आग्रह करते हैं, आप भी लेखिका हो आप हमें किसी भी साहित्यकार, ऑफिसर या नेता, अभिनेता के घर कहीं मत भेजना हम कहीं जाना नही चाहती है।''

आपका घर तो एक शिक्षक का घर है, हमारा सौभाग्य है कि हम एक शिक्षक के सम्मान से सम्मानित हुई हैं, परन्तु अब हम किसी सेवानिवृत्त शिक्षक के कांधे को भी सम्मानित नहीं करना चाहती, अतः आप या तो हमें अपने घर में स्थायी स्थान देना या फिर आपने प्रसिद्ध राष्ट्रकवि माखनलाल चतुर्वेदी की वह 'पुष्प की अभिलाषा' कविता तो सुनी ही होगी हमारी भी यही अभिलाषा हैं कि----

''चाह नहीं किसी कवि के
कांधे पर डाली जाऊं।''
चाह नहीं किसी नेता अभिनेता के
गले में चढ़कर इठलाऊं।
चाह नहीं किसी अभिनेत्री को पाकर ललचाऊं
मुझे ओढ़ा देना हे गृहस्वामिनी
फुटपाथ पर ठीठुरते किसी ग़रीब बुढ़े पर।
या ओढ़ा देना किसी शहीद के शरीर पर।
जिसने खाई हो गोली
देश की खातिर
अपने जिस्म पर
जिससे सफल हो हमारा यह नीरस जीवन। ❐

इंदौर, मध्यप्रदेश, मो. 8950672635

कहानी

विचारों की तरंगे

□ शीला मिश्रा

''किसने कहा था यह सब लाने को... ? ऐसी चीजें क्यों खरीद कर ले आती हैं आप... ? खुशी-खुशी सामान दिखाती नीरा यह सुनकर सन्न रह गई। एक पल को तो विश्वास नहीं हुआ कि कोई बहू अपनी सास से इस तरह से बोल सकती है..... आँखों की कोरों में आँसू थामे उसकी निगाह दरवाजे पर गई... शायद बेटा सुन रहा हो तो शीघ्र आकर माँ का साथ दे और काव्या से कहे कि माँ से इस तरह बात क्यों कर रही हो.... लेकिन व्यर्थ... क्योंकि वह तो कुछ देर पहले ही कहकर गया था कि मैं नहाकर आता हूँ।'

नीरा सिर झुकाए पलंग पर बैठी रही। थोड़ी देर में काव्या चाय रखकर चली गई। इस समय उसका मन चाय पीने का बिल्कुल नहीं कर रहा था। जबकि स्टेशन से घर आते उसे कितनी तलब लग रही थी चाय की... पर अब... ? मन के साथ मुंह का स्वाद भी कसैला सा हो गया था। वह अपने आपको कोसे जा रही थी...'' क्यों आई यहां... ?

नम आँखों में काली बदली की तरह पिछली बार का अनुभव उसकी आंखों के सामने मंडराने लगा... सुमन्त के ऑफिस जाते ही काव्या अपने कमरे का दरवाजा जोर से बंद करती और दिन भर के लिए अंदर बंद हो जाती। दरवाजा बंद करने की धाड़... की आवाज एक तमाचा सा जड़ देती थी उसके व विकास के गालों पर और जाहिर कर देती थी काव्या के मनोभावों को कि उसे उन दोनों का यहाँ आना रत्तीभर पसंद नहीं आया। फिर रसोई में साथ खाना बनाते न जाने कितनी बार काव्या उन्हें बुरी तरह से टोकती, उसके हर काम में मीनमेख तो निकालती ही... साथ ही अपनी सुघड़ भाभी व दीदी से तुलना कर यह जतलाती कि आप फूहड़ हो एकदम फूहड...। नीरा आहत हो कमरे में आकर सिसकियां भरने लगती। उसके मन का कोना-कोना कराह उठता, तब विकासजी उसे समझाते कि 'बस चार दिन और हैं'। कभी कहते 'बस दो दिन और हैं..., किसी तरह सह लो' फिर यहाँ नहीं आएंगे।''

अपने जीवन में इतना अपमानित तो वह कभी नहीं हुई थी बल्कि उसके संतुलित व्यवहार की सब प्रशंसा ही करते थे। उसने कितने शिष्टाचार व अनुशासन के साथ अपने बच्चों को बड़ा किया था पर अब समय का फेर... इतनी अशिष्टता उसके साथ ही की जा रही है और वह सह भी रही है। आखिर... क्यों... ? शायद संतान मोह ऐसा ही होता है... !

विकास को याद करके वह भावुक हो उठी। बाथरूम में जाकर नल चालू किया और जार-जार रोने लगी। मन ही मन यही सवाल उनसे करती रही, क्यों छोड़ गये मुझे इस तरह अकेले... ? कहाँ जाऊँ मैं अब... ? जयपुर में अकेली रहूँ तो रिश्ते-नाते-पड़ोसियों के प्रश्न 'बेटे के पास क्यों नहीं जाती... ?'' और यहाँ आओ तो बहू की जली. कटी सुनो।

''माँ, मैं ऑफिस जा रहा हूँ।'' दरवाजे पर थप-थप की आवाज के साथ सुमन्त के स्वर सुनाई पड़े। नीरा को लगा कि बस दरवाजा खोलकर सुमन्त को गले लगाकर अपना मन हल्का कर ले किन्तु मन का डर फन उठाने लगा... सुमन्त के जाने के बाद काव्या की बड़बड़ाहट... और उसका सिहरकर रुआंसा हो उठना... इस कल्पना मात्र से वह अपने भावों को बाँधने को विवश हो गई। नहाकर बालकनी में खड़ी हो वह सुमन्त की जाती हुई गाड़ी निहारती रही।

दिन भर थकान का बहाना कर वह कमरे में लेटी रही। जब काव्या चिंटू को स्कूल से घर लाने के लिए निकली तो उसने जल्दी से चाय बनाकर, रोटी में सब्जी रोल कर चाय के साथ खा ली। वह नहीं जानती कि वह इतना क्यों डरती है काव्या से.... ? लेकिन उसका रुखा व्यवहार उसे सहज नहीं रहने देता। जब तक वह बेटे के घर रही, उसकी यही दिनचर्या रही। शाम को तो रसोइया खाना बनाने आता तो सब गर्म-गर्म खाना खाने बैठ जाते। वैसे भी सुमन्त के सामने काव्या का व्यवहार कुछ अलग होता। वह यह जताने की कोशिश करती कि उसे मां की कितनी फिक्र है। उसका यह बनावटी व्यवहार नीरा को आश्चर्य में डाल देता और वह अकेली बैठी यही सोचती रहती कि 'वाकई गजब हैं आजकल की लड़कियां किस चालाकी से... कितनी होशियारी से अपने मन का कर लेती हैं।'

तीन दिन बाद ही उसकी मित्र रश्मि का फोन आया। इधर-उधर की बातचीत के बाद पूछ बैठी— ''हम जो सामान उन लोगों के लिए खरीदकर लाये थे, उनको पसंद आया न ?''

क्या कहती वह... ? हाँ-हूँ करके बात टाल दी। कैसे बताती कि उसके लाये सामान को कितनी हेय दृष्टि से देखकर काव्या ने तंज कसा था। पता नहीं चिंटू को वह उसकी लाई टी.शर्ट पहनाएगी भी या नहीं... 'कितनी दुकानों में भटकने के बाद उसे यह टी.शर्ट पसंद आई थी, महंगी भी थी पर स्नेह के सामने नीरा ने रुपये. पैसों की परवाह कहाँ की है....दबी हुई पीड़ा आँसू बन उसके दोनों गालों पर बह निकली... बहुत देर तक आँसुओं में भीगी रहने के बाद वह बस उठने ही वाली थी कि अचानक कमरे की लाइट जलाते हुए सुमन्त के स्वर सुनाई पड़े- ''अरे माँ.... शाम हो गई.... अभी तक सो रही हो... तबियत ठीक है न''

''हाँ-हाँ.... ठीक हूँ... इतना नर्म बिस्तर है कि कुछ ज्यादा ही सो लेती हूँ...।'' मन का खुरदुरापन ढाँकती हुई वह कह उठी तो सुमन्त ने कहा. ''माँ। मैं आज ऑफिस से जल्दी आ

गया हूँ। यहाँ पास में ही शिवजी का एक विशाल मंदिर बना है, वहीं हम सब चलेंगे और लौटते में एक नया मॉल खुला है, वहाँ चलकर कुछ खा पी लेंगे।''

किसी तरह दस दिन निकले और वह आज वापिस लौट रही थी। सुमन्त छोड़ने जा रहा था। उसने तो मना किया था ''एक-दो दिन ही तो छुट्टी के मिलते हैं, आराम करो।'' पर वह नहीं माना। नीरा की आँखे बेटे पर टिक गई। वह भी गाड़ी चलाते हुए बार-बार उनकी ओर देख लेता। शायद एक ही समय माँ व बेटे के मन में एक सी बातें चल रही हो.... खून का रिश्ता ऐसा ही होता है.... विचारों की तरंगें आपस में टकराती हैं।

एअरपोर्ट पर छोड़ते समय सुमन्त पैर छूने के लिए झुका तो नीरा ने गले से लगा लिया। कुछ कहना चाहती थी किन्तु रुँधे गले से इतना ही निकला ''अपना ख्याल रखना।''

सुमन्त ने सिर हिलाकर हामी भरी और शीघ्रता से गाड़ी में बैठ गया। उसकी आंखों की कोरों का भीगापन नीरा से छिपा नहीं रहा था। वह धीमे कदमों से आगे बढ़ी।

वहाँ से लौटे तीन दिन ही हुए थे कि बैंगलोर से कोरियर द्वारा एक डाक आई। नीरा ने यह सोचते हुए जल्दी से खोला कि शायद कुछ जरूरी कागज भूल आई होगी लेकिन यह तो सुमन्त का पत्र था—

''माँ, मैं हमेशा सोचता था कि जब भी आप मेरे घर आती हो, खुश क्यों नहीं रहती हो। सच बताऊँ, आपका उतरा हुआ चेहरा मुझे बहुत व्यथित करता था। कई बार मैं काव्या से पूछता भी कि माँ दिन में ठीक से खाना तो खाती है न? उनको कोई तकलीफ तो नहीं है न...? उनकी तबीयत तो ठीक है न...?''

वह तुरन्त मेरी बात काटते हुए कहती ''आप नाहक ही परेशान होते हो। माँ तो बहुत खुश रहती हैं...अपनी पसंद का खाना बनवाकर शौक से खाती हैं।'' यह सुनकर मुझे अच्छा लगता कि काव्या आपका बहुत ध्यान रख रही है लेकिन जब आपकी तरफ देखता तो आपके चेहरे की उदासी मुझे विचलित करती। इस बार मैंने घर में सीसीटीवी कैमरा लगवाया था तब मुझे पता चला कि काव्या आपके साथ किस तरह का व्यवहार करती है। माँ, आपने कभी कुछ कहा क्यों नहीं'... ? उसका व्यवहार देखकर मुझे बहुत ग्लानि महसूस हुई। हालांकि मैं समझता हूँ कि सब माँ, ऐसी ही होती हैं। यही सोचकर चुप रह जाती हैं कि मेरी वजह से बेटे-बहू में लड़ाई न हो। माँ का हृदय इतना ही विशाल होता है। स्वयं कष्ट सह लेंगी पर संतान को दुखी नहीं कर सकती लेकिन मैं आपका बेटा हूँ। आपके मुख के भावों से आपके सुख-दुख को समझ सकता हूँ। आपसे एक बात कहूं.... आपने मुझे पहले बताया होता तो शायद मैं काव्या को समझा पाता पर अब मुझे लगता है कि यह संभव नहीं क्योंकि काव्या ने झूठ का एक पहाड़ सा खड़ा कर दिया है मेरी व उसकी आँखों के सामने....। इसलिए मैंने स्वयं यह फैसला लिया है कि मां, अबसे मैं ही आपके पास आकर रहा करूँगा, आपका बेटा बनकर दो दिन.... तीन दिन.... जितना समय निकाल पाऊँ.... कभी-कभी बच्चों को भी ले आया करूँगा और दीवाली पर आपको यहाँ ले आया करूँगा, केवल चार दिन के लिए पर इन चार दिनों में पूरे समय मैं आपके साथ रहूँगा, तब मैं आपके मुख पर पहले जैसी मुस्कान देख सकूँगा। मैं आपको खुश देखना चाहता हूँ माँ आप मेरी माँ हो और आपको खुश रखने का कर्तव्य भी मेरा ही है और मैं इसे अवश्य निभाऊंगा। ठीक है न माँ.... आप ना मत करना... मुझे पुत्र का कर्तव्य निभाने का मौका अवश्य देना।''

सुमन्त

मुग्ध भाव से नीरा उस पत्र को उलटती-पुलटती रही। कुछ क्षणों के पश्चात उसका मुख ममत्व के भाव से आच्छादित हो उठा। ❐

पता:-बी-4, सेक्टर-2 रॉयल रेसीडेंसी,
शाहपुरा थाने के पास, बावड़ियां कलां,
भोपाल-462039 (म.प्र.);
मो. 9977655565

तीन कविताएँ

❐ मंजु मिश्रा (अमेरिका)

तुम्हारी याद का मफलर

तुम्हारी याद का मफलर
लपेट कर
मैं अक्सर टहल आती हूँ
जिंदगी की
उन भूली बिसरी
पुरानी गलियों में
जहाँ कभी मेरा बचपन
तुम्हारी उँगली
पकड़कर गुजरा था

हवाओं का रुख़

जब आग से खेलना हो
तो हवाओं पे नज़र रखना जरूरी है,
कहीं ऐसा न हो कि
हवाएँ अचानक
अपना रुख़ बदल दें
और उनकी ज़द में
तुम ही आ जाओ

ज़िन्दगी को कुछ हो गया है

छू नहीं पाता
भयावह मौत का तांडव हृदय जिसका
इंसान, वह रोबोट होकर रह गया है

मर चुकीं हैं संवेदनाएं
अब नहीं होती
सिहरन बदन में
लहू जमकर, मानों
नसों में सो गया है
ज़िन्दगी को कुछ हो गया है! ❐

manjumishra@gmail.com

कुछ ग़ज़लें

□ मुख़्तार अहमद

1

पहले क़िताबों को धूप दिखाई जाए!
फिर आइनों को सूरत दिखाई जाए!!

लफ़्ज़ की हर तह में नया लफ़्ज़ होगा!
नज़र को फिर नई क़ीरत सिखाई जाए!!

रोज़ रोज़ दिखे है एक ही रूख़ से सूरज!
पलटके ज़मीं की सीरत घुमाई जाए!!

क़लम की शक़्ल में तलवार लिए बैठा है!
रौशनाई से पहले मूरत दिखाई जाए!!

2

रोज़ बिखरता है वक्त बिस्तर की सलवटों सा!
नींद है कि गुज़रा वक्त पलक झपकाती नहीं!!

ख़ामख़ां यूंही खुदगर्ज़ हुई जाती हैं यादें!
टकरा के चांद से ख़ामोशी चिल्लाती नहीं!!

कहते हैं बड़ी पाबंद है वक्त की उमरे दराज़!
रगड़ने से एड़ियां भी मौत जल्द आती नहीं!!

ना सिसकती सिसकियां ना आहों की आवाज़ें!
चुप्पी की दुआ क्या आसमां तक जाती नहीं!!

3

चुन लेना ख़ाक़ से ख्वाब की हर किरच!
रूठकर दिल से जो बिछड़ गई आंख से!!

समेट लो बिखरी फूल की हर ग़ैरत!
ग़र्दिशे वक्त से जो बिखर गई शाख़ से!!

नाक़ाम सियासत का रंज जब तक करें !
फिर मुस्तकबिलेमुल्क़ निकल गई हाथ से!!

मुनादियों के शोर में रंगे दीवारो दर !
ज़िंदा लाशें निकल रहीं जलती राख से!!

4

दिन का उजाला नसीब नहीं जिनका!
अंधेरे में अपना खूवाब सजा लेते हैं!!

सूरज की परस्तिश का मुहताज नहीं!
उजाला अपना मिजाज़ बना लेते हैं!!

नहीं मुंह ताकते हैं समंदर अहले सब्र!
कुछ नहीं शबनम से प्यास बुझा लेते हैं!!

ज़रूरी नहीं हाथ कासामंगते के हो!
कुछ फ़कीर हैं मिला जो सब लुटा देते हैं!!

5

सही वक्त पे चले जाना इक अदा ही सही!
एड़ियां रगड़ चलना ज़िंदगी में शुमार नहीं!!

जड़ें ख़ामोशी की बड़ी मज़बूत हुआ करें!
ख़ामख़ां चिल्लाना बंदगी में शुमार नहीं!!

होले से खुद ब खुद जुदा हुईं हसरतें तमाम!
आख़िर तक ठहरना ज़िंदगी में शुमार नहीं!!

अदावतों ने मिटा डाले सजदो के निशान!
गुनाहों में क्या क़त्ल ए ईमां शुमार नही!!

6

सराब रहा या कि सहरा!
इक क़तरा जाम भर गया!!

सुबह किरन लहकी लहकी!
दुपहर तक घाम कर गया!!

तिरा मिलना नसीब रहा!
जाना गुमनाम कर गया!!

7

रब की तमाम खूबियों से लबरेज़ रहा!
और उम्र के हाथों मगर ज़रखैज़ रहा!!

देके आज़मा मेरी फ़िराक़ दिली या रब!
ना देकर क्यूं अब तक हैरतअंगेज़ रहा!!

इक इक दिन कटता है गिनते गिनते ज़बरी!
चांद भी रात भर क्यूं ज़मीं देंज़ रहा!!

मज़ा मौत का चखना है इक रोज़ रब्ब!
मुख़्तार अब तलक नज़र अंदेज़ रहा!!

8

शख़ू से क़माल क़िताबे आसमां लिखे बैठ ज़मीं!
और बेहूरे ज़मीं ही पे सजदे संभालते रहे!!

वो पानी सा था देकर प्यास चला गया!
नादानियां देखो कि हम दरिया खंगालते रहे !!

अमनोंअमां देकर वो घर से बेघर हो गया!
बहत्तर टुकड़ों में हम इक घर तलाशते रहे!!

फिर कहां मुसल्लों में बंधी रह गई इबादत!
नमाज़ लिए इमाम चारों कोने खंगालते रहे!!

9

मुस्करा होले से निकल गया!
भीड़ में सिफ़र सा कर गया!!

वैसे तो चेहरे बहुत हैं मगर!
अक्स फिर से ज़िंदा कर गया!!

नक्कारों में शोर है बहुत!
बजा के तूती निकल गया!!

सब राम बाण फेल हुए जब!
एक बिस्मिल काम कर गया!!

□

9350147760, वाट्सऐप 9350147760
56, DhirPur, Nirankari Colony, Near Ambedkarchopaad, Delhi 110009

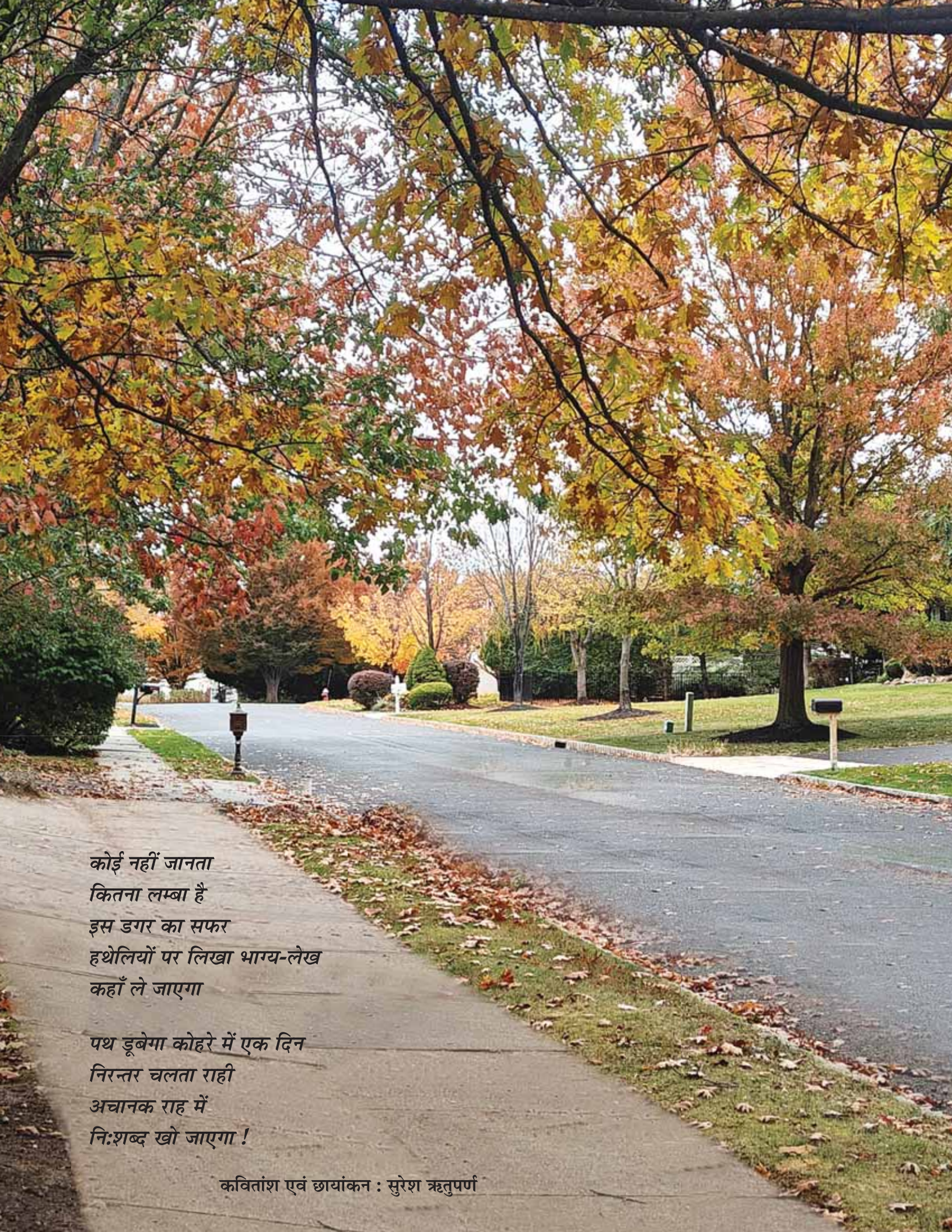

कोई नहीं जानता
कितना लम्बा है
इस डगर का सफर
हथेलियों पर लिखा भाग्य-लेख
कहाँ ले जाएगा

पथ डूबेगा कोहरे में एक दिन
निरन्तर चलता राही
अचानक राह में
नि:शब्द खो जाएगा !

कवितांश एवं छायांकन : सुरेश ऋतुपर्ण

कमल के फूल

फूल लाया हूँ कमल के
क्या करूँ इनका,
पसारें आप आँचल,
छोड़ दूँ;
हो जाए जी हल्का!

किन्तु होगा क्या
कमल के फूल का?

कुछ नहीं होता
किसी की भूल का-
मेरी कि तेरी हो-
ये कमल के फूल केवल भूल हैं-

भूल से आँचल भरूँ ना
गोद में इनको सम्भाले
मैं वजन इनके मरूँ ना!

ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के हैं,
इन्हें हूँ बीच से लाया,
न समझो तीर पर के हैं।

भूल भी यदि हैं
अछूती भूल हैं !
मानसर वाले
कमल के फूल हैं।

-भवानीप्रसाद मिश्र

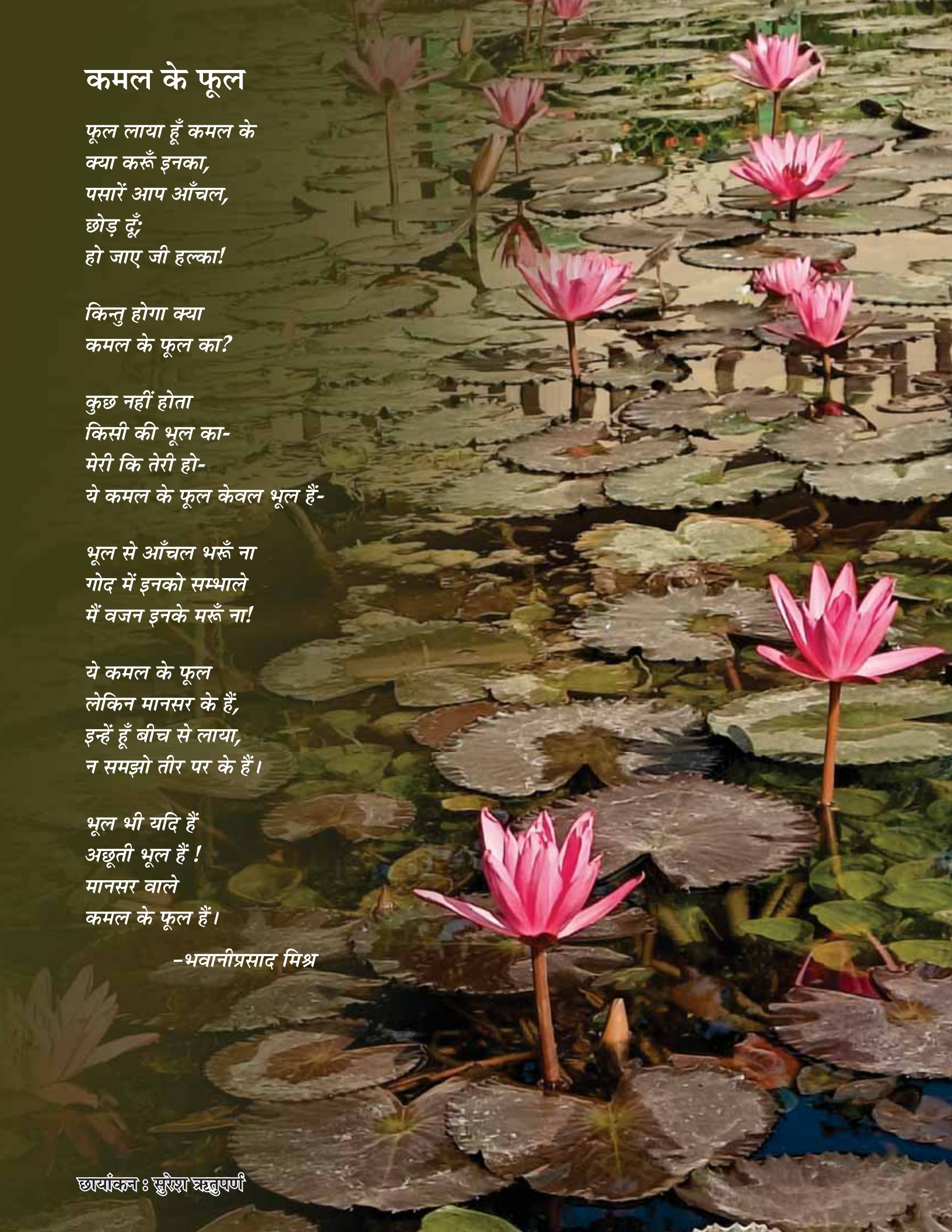

छायांकन : सुरेश चतुर्वेदी